बुनियादी शिक्षा

एक नई कोशिश

मई–जुलाई 2007

अंक–15

मातृभाषा में शिक्षा

बुनियादी शिक्षा

नियती अय्यर

पनपे बौद्धिकता जीवन में,
संवेदों का भान हो।
नए दौर की नई दिवा में,
समृद्ध बुनियादी ज्ञान हो।।

सृजनता के पथ पर चलता,
जब प्रेरक इंसान हो।
जीत मिलेगी जीवन में,
उन्नत बुनियादी ज्ञान हो।।

प्रायोगिक क्रियाओं से,
हर जिज्ञासा का समाधान हो।
शिक्षित होंगे पूर्ण रूप से,
सुदृढ़ बुनियादी ज्ञान हो।।

राष्ट्रपिता के स्वप्नों वाला,
भारतवर्ष गतिमान हो।
मानव मूल्यों का विकास हो,
सार्थक बुनियादी ज्ञान हो।।

गौरवमयी मातृभाषा का,
सदैव समग्र सम्मान हो।
शिक्षा के हर क्षेत्र में,
सशक्त बुनियादी ज्ञान हो।।

एक लक्ष्य हो मानवता का,
हर अक्षर आह्वान हो।
जीवन अर्थ लिए होगा,
जब सफल बुनियादी ज्ञान हो।।

अंक–15

परामर्श
हृदयकांत दीवान
सुदर्शन आयंगार

संपादक
के. आर. शर्मा

सलाहकार
भागचंद्र कुमावत
प्रवीण भाई डाभी
भरत भाई जोशी
सुधा भण्डारी

चित्रांकन
अशोक सोनी

कम्प्यूटर सेटिंग
इसरार अहमद

टंकण
प्रेम सिंह झाला

संपादकीय पता
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतहपुरा, मोहनसिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
Email : vbsudr@yahoo.com

बुनियादी शिक्षा: एक नई कोशिश

इस अंक में

चिट्ठी पत्री 2
मुद्दा शिक्षा विचार को मुख्य धारा में लाने का 5
हृदयकांत दीवान
हिन्दी की आज की स्थिति 10
सुदर्शन आयंगार
मातृ भाषा में शिक्षा : कुछ सवाल 21
विजय एस. वर्मा
गुम होती बोलियां 24
साधना सक्सेना
कौन भाषा, कौन बोली? 30
रमा कांत अग्निहोत्री
..... तो मां नन्हें बच्चे को किस भाषा में डांटेगी? 35
अशोक बोहरा
गांधी जी और शिक्षा में भाषा–नीति 37
रामशकल पाण्डेय
मातृ भाषा में शिक्षण 41
महेश कुमार पी. रावल
शिक्षा में क्रियात्मक अनुसंधान का कार्य 43
भाग चन्द्र कुमावत
करके सीखना–आयोजन एक मेले का 47
वि.वि. सिंह

पुस्तक समीक्षा
ज्ञान का निर्माण 49
के. आर. शर्मा

सहयोग राशि : 15 रुपए

सौजन्य : सर रतन टाटा ट्रस्ट, मुंबई एवं राष्ट्रीय ग्रामीण संस्थान परिषद् (NCRI) हैदराबाद

चिट्ठी-पत्री

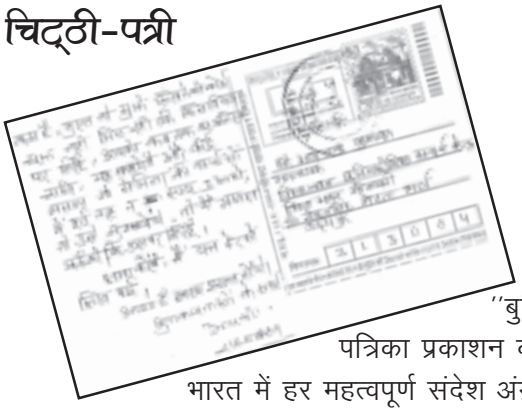

''बुनियादी शिक्षाः एक नई कोशिश'' के नाम से हिन्दी पत्रिका प्रकाशन के लिए आपको बधाई देती हूं, क्योंकि आजकल भारत में हर महत्वपूर्ण संदेश अंग्रेजी में दिया जाता है। मुझे पत्रिका का तेरहवां अंक प्राप्त हुआ जो ''काम और ज्ञान का रिश्ता'' जैसे महत्वपूर्ण विषय पर आधारित है। मैं आपको पत्र शीघ्र नहीं लिख सकी, क्योंकि पिछले महीनों में लगातार प्रवास पर रही। किन्तु इन प्रवासों में मैं इस पत्रिका को पढ़ पाई, यह एक अच्छी बात हुई।

पत्रिका में समन्वित सामग्री बहुत अच्छी है। ''कैसे हो काम और ज्ञान की जुगलबन्दी'' पढ़ते हुए मुझे स्मरण हो आया, एनसीईआरटी द्वारा ''काम और शिक्षा'' पर बनाए ''उपसमूह'' में मेरी भागीदारी का अनुभव, इस विषय पर हमारे समूह और उसके अध्यक्ष अनिल सद्गोपाल ने कितनी मेहनत की थी, किन्तु जब तक सरकार और जनता शिक्षा में वास्तविक परिवर्तन के लिए प्रतिबद्ध नहीं होते तब तक शिक्षा के बारे में हमारे ये विचार विचारमात्र ही रह जाते हैं, तब हमें लगा था कि शिक्षा में परिवर्तन के लिए एक जन आन्दोलन की जरूरत है।

आपने स्व. सरला बहन जी की आत्मकथा का अंश देकर पाठकों के सामने बुनियादी शिक्षा का एक जीता जागता चित्र प्रस्तुत किया है, किन्तु क्षमा करें आपने ''मेरी कैथरीन हाइलमन'' नाम के आगे कोष्टक में यदि सरला बहन लिख दिया होता तो पाठकों के लिए अधिक सुगम होता क्योंकि भारत की जनता उन्हें सरला बहन के नाम से ही जानती है।

दयाल चन्द्र सोनी ने अपने लेख में बहुत सही लिखा है कि बुनियादी तालीम के लिए शिक्षक एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। बुनियादी शिक्षा के प्रयोग करने के लिए सर्वप्रथम ''शिक्षक प्रशिक्षण'' से ही प्रारंभ करना चाहिए।

सोहन लाल पाटनीजी ने अपने लेख में एक दुःखद हकीकत का वर्णन किया है। इसे पढ़कर और भी सिद्ध होता है कि अपनी संतानों की शिक्षा के लिए जनता को स्वयं सजग और सक्रिय होना होगा। साथ ही शिक्षक वर्ग की गुणवत्ता तो बढ़ानी ही होगी।

एक–दो बातें सुझाव के रूप में लिख रही हूं, आशा है आप अन्यथा नहीं लेंगे। पत्रिका के कुछ लेखों में हिन्दी के बीच अंग्रेजी के शब्द इस तरह लिखे गए हैं जैसे उसके लिए हिन्दी में कोई उपयुक्त शब्द उपलब्ध ही न हो, इससे हिन्दी भाषा में निर्बलता व दरिद्रता सी दिखाई देती है जो कि वास्तव में है नहीं। हिन्दी एक समृद्ध भाषा है।

यह पत्रिका हिन्दी में प्रकाशित करने का निर्णय आपने लिया, इसके लिए तो मैं प्रारम्भ में ही आपका अभिनन्दन कर चुकी हूं। दूसरा सुझाव यह है कि बुनियादी तालीम की सफलता की कुछ कहानियों को भी पत्रिका में डालेंगे तो बुनियादी तालीम पर पाठकों का विश्वास अधिक सुदृढ़ होगा।

आपकी पत्रिका की सफलता के लिए अनेक मंगलकामनाएं।

राधा भट्ट
अध्यक्षा
गांधी शांति प्रतिष्ठान, दिल्ली

'कुछ करें' के बारे में मेरा अभिप्राय देने में विलम्ब हुआ है। अतः क्षमा प्रार्थी हूं।

प्रथम 'विज्ञान' क्या है वह हमें स्पष्ट होना जरूरी है। विज्ञान सत्य की खोज का साधन है। हर पहलू से कोई बात को जांचना आवश्यक है। संदेह व्यक्त करना विज्ञान का धर्म है। क्यों ऐसा है? सोचना होगा, ऐसे प्रश्नों को ढूंढ़ते रहने से ही सत्य के बारे में सफाई होगी। यह विज्ञान का मंत्र है। अतः विज्ञान एक विचार है महज कुछ प्रयोगों का खेल भर नहीं है।

आइन्स्टाइन का कहना था 'सच्चा वैज्ञानिक शंकाएं करता रहता है, प्रश्न पूछता रहता है। कभी ऐसा है, नहीं कहेगा। ऐसा संभव होने का है, ऐसा विधान पेश करने वाला वैज्ञानिक है।' अतः यह जो विचार दृष्टि प्राप्त करनी है, उस विषय को विज्ञान मानना है।

अपना विचार बनाने में, अभिप्राय प्राप्त करने में चौकसी होनी चाहिए। उदाहरण आपकी ऊचांई कितनी है? यह अन्दाज आधारित बात नहीं है और यह आपकी ऊचांई हर साल बदलती रहती है क्या? छठे दरजे में तब जो थी वही क्या आठवीं में है? और फिर साथी मित्रों की ऊचांई में क्या फर्क होता गया? यह सारा नापने का, जानने का और आगे उस पर कोई सोच बनाने का काम हैं। ऐसा करने से चौकसी करने की सीख शायद मिल सकती है।

नई तालीम की दृष्टि से बीज उगा कर देखने का काम एक अधूरा काम है। उस बीज से कितने सेम प्राप्त हुए? कितने नए और अधिक बीज प्राप्त हुए? बीज का फैलाव का हमारे जीवन पर क्या–क्या प्रभाव हुआ? और वह पौधा कब खत्म हो जाता है? आदि सारी बातों तक सोचना जरूरी है।

हमारे बच्चों को यह जानना आवश्यक है कि खाना कहां से आता है? कैसे उसे उगाया जाता है? उसमें क्या होता है? कौन उगाता है? कैसे इसे सुरक्षित रखा जाता है? कैसे यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाया जाता है? और कैसे खाने के लिए क्या भुगतान किया जाता है? इसके साथ ही बच्चों को कपड़ों, रहवास और जल के बारे में भी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

क्या बच्चे यह जानते है कि कपड़े क्यों श्रीलंका और बांगलादेश में बनाया जाता है? क्या वे यह जानते हैं कि उनके माता–पिता दूरदराज के देशों में ऊर्जा स्त्रोत की सुरक्षा के लिए या फिर हथियार निर्माण के लिए सरकार को कर देते है। क्या वे यह जानते हैं कि जल क्यों महत्वपूर्ण है? इन सब चीज़ों की जानकारी के बिना हम अपनी ही धरती पर अनज़ान हैं।

बागवानी करना, स्कूल की सफाई करना यह आधा अधूरा काम लगता है। अपनी रोज़–रोज़ उपयोग में जो चीज़ें आती हैं, उसके बारे में जानकारी प्राप्त करना, उसमें स्वावलम्बन हो, यह कैसे शिक्षा में स्थान प्राप्त करें, यह ध्यान पर रखना है।

नई तालीम में जीवन से जुड़े विज्ञान को स्थान देने की जरूरत है। गांधी जी ने कहा कि मेरा शरीर भी तो एक मशीन है। इसका क्या–क्या उपयोग होता है? क्यों वह बिगड़ता है? कैसे उसकी देखभाल करनी है?

ये अनंत विस्तार खुल सकते हैं जिसके द्वारा हम जो चीज़ें उपयोग में लाते है उसको पहचान सकते है। पर बात यहां पूरी नहीं करनी है। मानव को विज्ञान के यंत्रों के अधीन परावलंबी बनने से बचाना है। अतः ऐसा कोई परावलंबन करवाने वाला उपक्रम जीवन का स्पर्श जब–जब करे तब–तब क्या सावधानी बरतनी है और आखिर स्वावलंबन कैसे करें, उस पर सोचना है। स्वावलंबन केवल कोई महागुण की दृष्टि से नहीं देखा जाता। पर आज एक अहम आवश्यकता है।

विज्ञान की बात व्यापक संदर्भ के साथ हमारे ध्यान में आए, यह आवश्यक कदम है और उस जागृति को प्राप्त करके अपनी जिज्ञासा बढ़ाने वाले विद्यार्थी को समर्थ होने का प्रयत्न करने वाले बच्चे हमें बनाना है।

क्षमा करें, बात लंबी हो गई।

ज्योति भाई देसाई
नहरकांठा, वेड़छी
जिला– सूरत

बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश के अंक नियमित मिल रहे हैं। मेरा एक सुझाव है कि हरेक लेख के अंत में सभी लेखकों के संपर्क सूत्र भी अवश्य दिए जाएं। इससे एक दूसरे से संपर्क बढ़ाने में अधिक सहायता मिलेगी।

महेश रावल
हिंदी शिक्षक महाविद्यालय
गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद
गुजरात

मुद्दा गांधी शिक्षा विचार को मुख्य धारा में लाने का

हृदयकांत दीवान

हमारे समक्ष मुख्य धारा की शिक्षा को पुनर्शोधित करने की बजाए गांधी विचार को मुख्य धारा में लाना एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। सामान्यतः हम गांधी जी और बुनियादी शिक्षा के मूल बिंदुओं की अनदेखी कर जाते हैं जो कि हमारे आसपास की दुनिया को बदलने का प्रयास करते समय पर्यावरण, परिस्थिति एवं प्रत्येक व्यक्ति, विशेष रूप से सबसे कमजोर व्यक्ति, के अनुरूप है। यह स्वयं के लिए लाभ प्राप्त करने से अलग प्रकार की बात है। मध्यम वर्ग की इच्छाएं और आवश्यकताएं अंतहीन हैं, इसलिए हम उन सभी को पूरा नहीं कर सकते। किन्तु हमें इस बारे में भी स्पष्ट होना होगा कि जैसे–जैसे आवश्यकताओं की पूर्ति होती है वे बढ़ती जाती हैं और अधिक सुविधाओं की आवश्यकता महसूस होने लगती है। मानव श्रम के प्रति सम्मान का सिद्धान्त इस बात की ओर इंगित करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार का श्रम अवश्य करना चाहिए और चुनौतीपूर्ण कार्य से सृजित मानसिक विकास और शारीरिक सक्षमता (फिटनेस) में इससे मिलने वाली मदद को स्वीकार

और आत्मसात करते हुए संवेदनशील बनना चाहिए। हम यह भी भूल जाते है कि बुनियादी शिक्षा का मूल सिद्धांत समाज का सामूहिक रूप से भला करना है, न कि अध्यापकों के व्यक्तिगत लाभ हेतु उनमें स्पर्धा कराना अथवा अध्यापक, प्रशिक्षकों, पाठ्यक्रम निर्माताओं इत्यादि को व्यक्तिगत लाभ पहुंचाना।

भाषा और संस्कृति सभी मनुष्यों में गहरी और निहित अवधारणाएं हैं। इनका सीधा संबंध स्वयं की छवि और आत्मसम्मान के साथ ही उस परिवार और समुदाय के प्रति सम्मान से है जिससे कि संबंधित व्यक्ति आता है। यह सत्य है कि अंग्रेजी की तुलना में हिन्दी हमारी दुनिया के अधिक निकट है, किन्तु यदि हम मातृभाषा की बात करते हैं तो मुद्दा अधिक कठिन हो जाता है। एक पंजाबी अथवा गुजराती व्यक्ति द्वारा हिन्दी बोलने में तथाकथित ''बोली उच्चारण'' विनोद की वस्तु बन जाता है। भाषा सीखने संबंधी आवश्यक आधार बिंदुओं को हम बिल्कुल भी स्वीकार नहीं करने और उच्चारण जैसी बातों को विशेष महत्व देते हैं। शुद्धता का प्रभुत्व बच्चे के भाषा विकास को अपने दमघोंटू प्रभाव से दबाए रखता है। मैं यह भी महसूस करता हूं कि भाषा का मुद्दा राजनैतिक कारणों से जटिल बन गया है। हिन्दी को अति प्रभुत्व सम्पन्न भाषा मानना ऐसे ही मुद्दों का परिणाम है। एक भाषा का उपहास करना और दूसरी भाषा पर जोर डालना भी उन सभी के आत्मसम्मान पर कुठाराघात है जो राजनैतिक और सामाजिक शक्ति का प्रतीक समझी जाने वाली भाषा को नहीं जानते–पहचानते।

हमें बहुत धैर्य रखने की आवश्यकता है। छोटे–छोटे मुद्दों पर वाद विवाद करने या परेशान होने तथा ऐसे लोग जो प्रामाणिक अथवा विश्वसनीय हैं या नहीं, उनकी अभिलाषाओं से व्यथित होने से कुछ नहीं होगा। गांधीवादी अर्थव्यवस्था और उससे उभरने वाले विश्व परिदृश्य को आज के संदर्भ में समझना इतना आसान नहीं है। संभवतः यह कभी भी आसान नहीं था, किन्तु आज के संदर्भ में यह और भी कठिन हो गया है। जिन मुद्दों को हम महत्वपूर्ण मानते हैं, उन्हें पहचानने की आवश्यकता है। मैं सोचता हूं कि हमें बहुत सारी चीजें एक साथ हाथ में नहीं लेनी चाहिए और एक ऐसी कार्यनीति तैयार करने का प्रयास करना चाहिए जिसके द्वारा हम इसे स्वीकार करने हेतु अधिक लोगों को तैयार कर सकें। लोगों के बीच विभाजन का एक सबसे बड़ा कारण है उनमें परस्पर सामान्य अनुभव के आदान–प्रदान की कमी। इस संदर्भ में यह बात महत्वपूर्ण है कि कुछ कार्य ऐसे हैं, जिनसे प्रत्येक व्यक्ति जुड़ा हुआ है। शिक्षा का व्यापीकरण इसे संभव करने हेतु अवसर प्रदान करता है और इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा में दोनों पहलुओं का समावेश हो, उन विचारों के साथ कार्य करने का पहलू जो तात्विक है और उपलब्ध सामग्री के

मानव श्रम के प्रति सम्मान का सिद्धान्त इस बात की ओर इंगित करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार का श्रम अवश्य करना चाहिए और चुनौतीपूर्ण कार्य से सृजित मानसिक विकास और शारीरिक सक्षमता (फिटनेस) में इससे मिलने वाली मदद को स्वीकार और आत्मसात करते हुए संवेदनशील बनना चाहिए। हम यह भी भूल जाते है कि बुनियादी शिक्षा का मूल सिद्धान्त समाज का सामूहिक रूप से भला करना है, न कि अध्यापकों के व्यक्तिगत लाभ हेतु उनमें स्पर्धा कराना अथवा अध्यापक, प्रशिक्षकों, पाठ्यक्रम निर्माताओं इत्यादि को व्यक्तिगत लाभ पहुंचाना।

साथ काम करते हुए अपने हाथों का उपयोग ऐसे कार्य के लिए करना जो उत्पादक है।

विद्यालय शिक्षा में ये दोनों अंश हों जिसका तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने हाथों से कुछ कार्य अवश्य करना चाहिए। इस कार्य को अर्थपूर्ण बनाने की दृष्टि से यह अभ्यास रूचिकर और चुनौतीपूर्ण होना चाहिए। किसी कार्य को हाथ से करने की प्रक्रिया मात्र यांत्रिक पुनरावृति न बन जाए, हमें इस बात का ध्यान रखना होगा। कार्य सृजनात्मक एवं उत्पादक होना चाहिए और इसमें सीखने वाले का मस्तिष्क वास्तविक रूप से लिप्त होना चाहिए, जिससे कि बुनियादी शिक्षा का सिद्धान्त ''हाथ से उपयोग के माध्यम से सीखना'' व्यवहार में लाया जा सके। इसके लिए इस प्रकार की प्रवृतियों और कार्यों को खोजने तथा तैयार करने हेतु प्रयास करने होंगे, जिनसे विद्यार्थियों में ऐसे कार्य करने की संभावनाएं और क्षमता उत्पन्न की जा सके, जिसके आधार पर वे मूल सामग्री के मूल्य की वृद्धि के स्तर को प्राप्त कर पाएंगे। इस संभावना का पता लगाया जा सकता है कि क्या उन कार्यो से छात्रों को थोड़ी आय भी हो सकती है। किन्तु यह आय किसी भी स्थिति में अधिक नहीं होगी अथवा किसी भी प्रकार से उनकी फीस की पूर्ति नहीं कर सकेगी।

भाषा, संस्कृति तथा आत्म सम्मान का मुद्दा बहुत महत्वपूर्ण है। वर्तमान प्रवृति तथा खिंचाव को सामने रखते हुए इस प्रश्न को सावधानीपूर्वक संभालना होगा। एक ओर हमारे समक्ष यह तथ्य है कि अधिकांश लोग अंग्रेजी सीखने की अभिलाषा रखते हैं क्योंकि यह वैश्विक भाषा है और अंतर्राष्ट्रीय संप्रेषण का माध्यम है। यह ऐसी भाषा है जिसमें बहुत सारी सामग्री उपलब्ध है और जिसके माध्यम से संसार भर में संदेशों का आदान–प्रदान संभव हो गया है। जापान और जर्मनी के उदाहरण भारत में बच्चों की स्थिति से मेल नहीं खाते क्योंकि यहां हमारी अर्थ व्यवस्था का अंग्रेजी बोलने वाले पश्चिमी जगत के साथ गहरा कार्य संबंध स्थापित है। हमारे पास मूल उत्पादन क्षमता की कमी है और ऐसा माल उत्पादित करने की योग्यता नहीं है जो गुणवत्ता की दृष्टि से उच्चकोटि का हो तथा उचित मूल्य पर उपलब्ध हो जिससे कि वह विश्व के अन्य उत्पादकों के साथ स्पर्धा कर सके। हमारी शहरी अर्थ व्यवस्था भाषा तथा कंप्यूटर के संदर्भ में बाहर से कराए गए कार्य पर आधारित है। वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो आरंभ हो चुकी है और राजनैतिक दृष्टि से थोड़े ही समय में उन शक्तियों का मुकाबला करना अथवा उन्हें पराजित करना संभव नहीं हो पाएगा जो वैश्वीकरण का समर्थन कर रही हैं। थोड़े समय में (एवं संभवतः लम्बे दौर में भी) बिना किसी ऐसे विकल्प के जो सुखद हो और सर्वत्र सुलभ हो, उपभोक्तावाद से लड़ना कठिन होगा। यह सत्य है कि पर्यावरण के वैश्वीकरण के संबंध में हाल ही में की गई खोज एवं चिन्ताओं तथा संरक्षण पर बढ़ते जोर ने इस विषय में संतुष्टि को उन लोगों के बीच भी एक बहुमूल्य विचार बना दिया है जिन्हें आर्थिक दृष्टि से इसकी आवश्यकता नहीं है। तथापि लोगों को व्यावहारिक गांधीवाद की शक्ति सामर्थ्य महसूस कराना और यह महसूस कराना आसान कार्य नहीं है कि एक चर्चा कक्ष में सभी कुछ बन्द कर देना और वातानुकूलन

हमारी शहरी अर्थ व्यवस्था भाषा तथा कंप्यूटर के संदर्भ में बाहर से कराए गए कार्य पर आधारित है। वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो आरंभ हो चुकी है और राजनैतिक दृष्टि से थोड़े ही समय में उन शक्तियों का मुकाबला करना अथवा उन्हें पराजित करना संभव नहीं हो पाएगा जो वैश्वीकरण का समर्थन कर रही हैं।

मशीन चला देना आवश्यक नहीं है, जिसका परिणाम होता है देख–रेख और विद्युत पर भारी व्यय और यह कि चर्चा एक अच्छे अथवा साधारण वातावरण में भी हो सकती है तथा शरीर को अधिक आराम तथा सुविधाएं देने से इसका क्षरण ही होता है।

भाषा का प्रश्न भी, यह चाहे हिन्दी का हो अथवा प्रांत की भाषा अथवा अन्य भाषाओं का, जटिल है। यदि हम हिन्दुस्तानी को देश की भाषा बनाने की आवश्यकता पर नीतिगत विचार करें तो यह स्पष्ट है कि यह विचार स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय अत्यधिक महत्वपूर्ण था। आज हमें सभी समुदायों की आकांक्षाओं को जानना और स्वीकार करना होगा और इस तथ्य का सम्मान करना होगा कि वर्तमान समाज में भी अनेक ऐसी भाषाएं एवं समुदाय हैं जो कि पीड़ित हैं अतः उनकी मुक्ति हेतु प्रयास किए जाएं। हमें उनकी भाषा को अधिक सम्मान देना होगा तथा उसे समुचित स्थान प्रदान करना होगा। इस प्रयास में एक आवश्यक बात यह है कि स्थानीय भाषा में ज्ञान को सृजित किया जाए और ज्ञापित किया जाए, साथ ही लोगों के मस्तिष्क में दूसरी भाषाओं के प्रति सम्मान जागृत किया जाए न कि अन्धे राष्ट्रवाद को तथा इनमें (भाषाओं में) से किसी एक को लोगों पर थोपा जाए।

भाषा का प्रश्न भी, यह चाहे हिन्दी का हो अथवा प्रांत की भाषा अथवा अन्य भाषाओं का, जटिल है। यदि हम हिन्दुस्तानी को देश की भाषा बनाने की आवश्यकता पर नीतिगत विचार करें तो यह स्पष्ट है कि यह विचार स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय अत्यधिक महत्वपूर्ण था। आज हमें सभी समुदायों की आकांक्षाओं को जानना और स्वीकार करना होगा और इस तथ्य का सम्मान करना होगा कि वर्तमान समाज में भी अनेक ऐसी भाषाएं एवं समुदाय हैं जो कि पीड़ित हैं अतः उनकी मुक्ति हेतु प्रयास किए जाएं।

भारतीय संदर्भ में विविधता तथा अनेकता को समक्ष रखते हुए इस मुद्दे पर चर्चा करना बहुत ही महत्वपूर्ण है। यदि हम बुनियादी शिक्षा के प्रति सच्चे होना चाहते हैं तो हमें इस तथ्य को स्वीकार करने की आवश्यकता है कि पर्यावरण, संस्कृति तथा प्रत्येक बालक की भाषा का सम्मान किया जाना चाहिए।

बुनियादी शिक्षा भी उन मूल्यों की ओर सूक्ष्म रूप से इंगित करती है जिन पर शिक्षा द्वारा जोर दिया जाना चाहिए। इन मूल्यों में सम्मिलित हैं सहयोग, पर्यावरण एवं आस–पास के समाज के उत्तरदायित्व, ईमानदार, लगनशील तथा उद्देश्यपूर्ण होना, साथ ही दूसरों की तकलीफ और आवश्यकताओं के प्रति करूण भाव और जो कुछ एक व्यक्ति के पास है, उसे लोगों के एक वृहत्तर दायरे में बांटना। सामाजिक उत्तरदायित्व तथा व्यक्ति जिस समुदाय का है उस समुदाय में सहकार तथा खुशी लाने की दृष्टि से यह विचार जीवन को एक स्पष्ट उद्देश्य प्रदान करता है। यह ज्ञान सृजन, ज्ञान व्यापीकरण तथा ज्ञान के सम्मिश्रण पर जोर देता है और इसके पश्चात् अपने आस–पास के लोगों के बीच इसे बांटने के लिए प्रेरित करता है, जिससे कि सभी का जीवन बेहतर हो सके। अतः एक प्रकार से बुनियादी शिक्षा से जीवन का जो उद्देश्य उभरता है, वह है समुदाय के जीवन में सुधार और लोगों के संघर्ष में उन्हें आगे बढ़ाना। इस प्रक्रिया और इस प्रयास में हमें यह आश्वस्त करना होगा कि समुदाय में सभी सुखी तथा संतुष्ट हों और किसी भी व्यक्ति के आत्मसम्मान का हनन नहीं हो। और यह सब करना एक कठिन उद्देश्य की पूर्ति करना है। जिन तथ्यों और उद्देश्यों की हम चर्चा कर रहे हैं, उन पर काम करने के लिए हमारे पास छात्र तथा विद्यालय हैं। यह कार्य केवल

उनके लिए ही नहीं है, अपितु उन सभी के लिए हैं जो यह मांग करते हैं कि हमें ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए जिसमें अध्यापकगण अपेक्षाकृत सुविधा महसूस कर सकें और नैतिक तथा सदाचार संबंधी अधिकारों को छोड़कर शेष सभी स्थितियों में स्वयं को पीड़ित महसूस नहीं करें। ये बड़ी ही कठिन चीज़ें हैं और हमें इन बातों को विद्यालयों के प्रबंधन के साथ बांटना आवश्यक है, साथ ही यह भी आवश्यक है कि विद्यालय में एक ऐसी प्रक्रिया आरम्भ की जाए जिसके अंतर्गत अध्यापकों को इन मुद्दों पर चर्चा के लिए निमन्त्रित किया जा सके।

अच्छी शिक्षा यह मांग करती है कि विद्यालय तथा छात्र स्वयं अपने लिए और साथ ही दूसरों के लिए काम करें और यह महसूस करें कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति महत्वपूर्ण है तथा जीवन का उद्देश्य दूसरे बच्चे के साथ स्पर्धा करना नहीं, किन्तु सहयोग करना है, जिससे कि दोनों के जीवन अस्तित्व में सुधार लाया जा सके। विद्यालय एक ऐसा स्थान है जिसकी देखरेख सभी को करनी होती है और इसके सुधार में सहभागी बनना होता है। ऐसा नहीं है कि जैसे समुदाय और विद्यालय एक दूसरे का सामना कर रहे हों और विद्यालय के मूल्य, बच्चे और अध्यापक समाज की संस्कृति से पूर्णतः भिन्न प्रकार के हों। विद्यालय को संस्कृति तथा पर्यावरण का हिस्सा बनाने के लिए यह महत्वपूर्ण होगा कि हम ऐसे संभावित हस्तक्षेप क्षेत्रों के बारे में विचार करें जिनके बारे में यह आवश्यक नहीं कि वे असहमति के बिन्दु हो और जो आरंभ में तो जटिल हो सकते हैं, किन्तु धीरे–धीरे सभी संस्कृतियों के प्रति आदर भाव की ओर ले जाने में समर्थ हों। इनकी सहायता से उन संघर्षों को भी हाथ में लिया जा सकेगा जो कि आज समाज में व्याप्त असमानता के परिणाम हैं।

हमारे द्वारा लड़ी जाने वाली लड़ाइयों और जिन संघर्षों को हम हाथ में ले सकते हैं, उनका चयन करते समय इन सभी मुद्दों के बारे में स्पष्ट होना होगा। वे ऐसे मुद्दे होंगे जिनसे लोगों को निकट लाने का हमें कुछ अवसर मिल सकेगा और जैसा कि गांधी जी ने कहा है कि किसी व्यक्ति को हीन रूप में नहीं दिखाना है अपितु सभी को इस बात के प्रति प्रेरित और प्रोत्साहित करना है कि परस्पर सहयोग करें और यह महसूस करें कि सुधार एवं संघर्ष से उन्हें सहायता मिलेगी।

अन्य महत्वपूर्ण कार्य है शिक्षा के बारे में उपलब्ध ज्ञान को पकड़ना, उस ज्ञान को जो भारत में और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सृजित हुआ है, इसका विश्लेषण करना। ऐसे संस्थान जो बुनियादी शिक्षा के दर्शन में विश्वास रखते हैं, उन्हें शोध कार्य हाथ में लेने चाहिए, जिससे कि हमारे समक्ष यह स्पष्ट हो सके कि हमें क्या करना है और साथ ही हमें इसके कारण अथवा आधार समझने में हर संभव सहायता मिल सके। इस शोध के माध्यम से अच्छी शिक्षा अर्थात् बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों का कक्षा–कक्ष तथा विद्यालयों में उपयोग करने हेतु अच्छे तरीके एवं तकनीक भी विकसित होनी चाहिए। हमें उस संरचना और उन प्रक्रियाओं को समझना होगा जिनके द्वारा लोगों को इसके सिद्धान्तों को समझाया जा सकेगा और इसके मूल अभिप्रायों के अनुरूप चलने के महत्व को भी उन्हें महसूस कराया जा सकेगा। हमें यह भी समझना होगा कि यह सब बाहर से नहीं थोपा जा सकता। स्वतन्त्रता आंदोलन की भांति हमें भी एक कार्यनीति विकसित करनी पड़ेगी, जिससे कि शैक्षणिक पृष्ठभूमि के साथ–साथ इसका एक अलग मुद्दा बन सके और इसके लिए आवश्यक सभी साजो–सामान जुटाया जा सके।

हृदयकांत दीवान, विद्या भवन सोसायटी, फतेहपुरा, मोहनसिंह मेहता मार्ग, उदयपुर

हिन्दी की आज की स्थिति

सुदर्शन आयंगार

कोलाज : नियति अय्यर

आमतौर पर निवेदन छोटे होते हैं, परंतु यह निवेदन ज़रा लंबा रहेगा क्योंकि इस के ज़रिए देश में चली भाषा की राजनीति के बारे में भी एक जायज़ा लेने का इरादा है। इस राजनीति के चलते महात्मा गांधी की सही समझ से हम परे हो गए हैं। कहना न होगा कि और सवालों की तरह इस देश की भाषा के सवाल पर भी गांधी जी ने अत्यंत गहराई के साथ विचार किया। पराई भाषा शिक्षा के ज़रिए हम

पर अपनी संस्कृति थोप सकती हैं और अपनी भाषा के बगैर हमारी अपनी संस्कृति समझना मुश्किल होगा, यह हकीक़त बखूबी समझते थे। इसीलिए 1920 में गांधी जी ने अहमदाबाद में गूजराज विद्यापीठ की स्थापना की तब जिन बारह ध्येयों को गिनाया उसमें आठवां ध्येय था कि विद्यापीठ में राष्ट्रभाषा 'हिन्दी–हिन्दुस्तानी' यानि वह ज़बान जो उत्तर के सामान्य हिन्दु–मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या फारसी लिपि में लिखते हैं।' उस समय से हिन्दी–हिन्दुस्तानी स्नातक स्तर पर अनिवार्य रूप से सिखायी जाती है। युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन से मान्यता मिल जाने पर अनुस्नातक विभागों में उर्दू लिपि लाज़मी नहीं रही।

गांधी जी के मन में तथा उनके विद्यापीठ के साथियों के मन में भी यह बात रही होगी कि सिर्फ पढ़ाई में हिन्दी–हिन्दुस्तानी दाखिल करने से भाषा का प्रचार प्रसार नहीं हो पाएगा इसीलिए उनके एक जाने–माने विद्वान काका साहेब कालेलकर ने सन् 1937 से हिन्दी प्रचार का काम शुरू किया। सन् 1946 में गूजरात विद्यापीठ में हिन्दी–हिन्दुस्तानी के प्रचार के लिए एक समिति का गठन हुआ, जिसके अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल बने। तब से लेकर आज तक गूजरात विद्यापीठ हिन्दी प्रचार के काम में जुटी हुई है। विद्यापीठ के कुलसचिव ने आमुख में विद्यापीठ के साठ बरसों के काम का सुंदर ब्यौरा पेश किया है। साठ साल तक अविरत प्रचार का काम करना आसान नहीं होता परंतु विद्यापीठ की प्रचार समिति को योग्य अध्यक्ष तथा मंत्री मिलते रहे और काम चलता रहा। हमें इस बात का फ़क्र है कि हम इन साठ बरसों में लाखों लोगों तक हिन्दी का संदेश पहुंचा पाए हैं। साठ साल पूरा होने के अवसर पर हीरक जयंती मना कर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं। जब यह महोत्सव हो रहा है तब कुछ लोगों ने विविध विषयों पर अपने विचार रखे हैं उन्हें आपके सामने रखने में हमें विशेष आनंद हो रहा है। इस मौके पर मैं चाहूंगा कि दो–एक बातें भी रखी जाए कि देश में इस दिशा में क्या हो पाया और क्या नहीं हो पाया। लगे हाथों विद्यापीठ के काम का भी जायजा लेने की कोशिश करूंगा।

1920 में गांधी जी ने अहमदाबाद में गूजराज विद्यापीठ की स्थापना की तब जिन बारह ध्येयों को गिनाया उसमें आठवां ध्येय था कि विद्यापीठ में राष्ट्रभाषा 'हिन्दी–हिन्दुस्तानी' यानि वह ज़बान जो उत्तर के सामान्य हिन्दु–मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या फारसी लिपि में लिखते हैं।'

मेरे विचार से आज़ादी मिलने के बाद ही बड़ी गलती हो गई। 14 सितंबर 1949 को नागरी लिपि में लिखी हिन्दी को राजभाषा के तौर पर मान्यता मिली और 1950 में संविधान में भी इसकी तस्दीक हो गई तब से हिन्दुस्तानी भाषा मर गई। उसी दिन ये तय हो गया कि हिन्दी राजभाषा चाहे बन जाए परंतु राष्ट्रभाषा नहीं बन पाएगी। राजभाषा बना देने की वजह से इस भाषा का प्रचार–प्रसार सरकारी जिम्मा हो गया। आम आदमी की जिम्मेदारी नहीं रही। सरकार ने अपने ढंग से यानि कि बाबुआना ढंग से काम किया। बहुत सारे नोटिस और सर्क्युलर निकाले गए। आदेश व फरमान जारी हुए जिसमें राज्य सरकारों तथा सार्वजनिक क्षेत्र के दफ्तरों में राजभाषा विभाग खोल देने की बात थी। ऐसे विभाग खुल गए, राजभाषा अधिकारियों की नियुक्तियां होने लगी। कहीं–कहीं उन्हें हिन्दी अधिकारी कहा जाने लगा और राजभाषा की प्रगति दिन दूनी रात चौगुनी होने लगी। कोई अगर कमी रह गई थी तो लोकसभा में संसद सदस्यों की कमेटियां बन गई और भारत

भ्रमण के अन्य कार्यक्रम हर साल होने लगे। हिन्दी–दिवस, हिन्दी सप्ताह, हिन्दी पखवाड़ों की झड़ी लग गई और राजभाषा फाइलों में चल निकली। जब ये राजभाषा की तरह थोपी गई तब इसका दक्षिण के राज्यों ने हिंसक विरोध किया। शायद केन्द्र सरकार भी यही चाहती थी। हिन्दी के प्रति अनुराग और आग्रह खत्म हो गया और अंग्रेजी हावी हो गई। इक्कीसवीं सदी के आरंभ में राजभाषा और राष्ट्रभाषा दोनों ही देश के महत्वपूर्ण मुद्दों की फेहरिस्त से लगभग निकल चुके हैं।

स्वतंत्रता के साठ वर्ष पूरे होने को आए हैं और अंग्रेजी को निकाल बार नहीं कर पाए इसलिए अब वह हिन्दी के साथ ही एक से ज्यादा उपरोक्त लक्षणों वाली बनती नज़र आ रही है।

हिन्दी की वर्तमान परिस्थिति पर आने से पहले जब हिन्दी का मुद्दा गर्म था तब कुछ बातें उजागर करना चाहूंगा। शुरूआत गांधी जी की सोच से करता हूं। गांधी जी जानते थे कि इस देश का एकसूत्र में पिरोने के लिए अगर कोई कड़ी है तो वह हिन्दी–हिन्दुस्तानी है। और मैं आपका ध्यान फिर इस ओर खींचूं कि गूजरात विद्यापीठ के आठवें ध्येय में एक टिप्पणी हैं, जिसमें आम आदमी की बोली पर वज़न है। गांधी जी जितना हिन्दुस्तानी ज़बान से प्रेम करते थे उतना ही उनका अंग्रेजी का विरोध था। मात्र इसलिए नहीं कि अंग्रेजी विदेशी बोली थी परंतु उस भाषा को अपनाने के दुष्परिणाम गंभीर थे और तत्कालीन समय में ये विचार और भावना सटीक थी। अंग्रेजी किसे सीखनी चाहिए इस पर विचार स्पष्ट थे। 10 अक्टूबर 1910 के रोज दूसरी गुजरात शिक्षा परिषद में उन्होंने कहा था कि दो वर्गों को अंग्रेजी की जरूरत होगी। एक ऐसे स्वदेशाभिमानी लोग जो भाषा सीखने की शक्ति और सामर्थ्य रखते हैं और अंग्रेजी साहित्य का ज्ञान देशवासियों तक पहुंचाना चाहते थे और दूसरे ऐसे लोग जो अंग्रेजी ज्ञान की मदद से धन संकलन करना चाहते हैं। तत्कालीन परिस्थितियों में भारत देश में ये समझदारी खूब मायने रखती थी। उस काल में भी ऐसे मानने वालों की कमी नहीं थी कि अंग्रेजी भाषा कड़ी भाषा के रूप में उभर सकती है, अतः अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दे देना चाहिए। गांधी जी जब दक्षिण अफ्रिका में थे तब सन् 1906 के इन्डियन ओपीनियन के 18 अगस्त के अंक में उन्होंने स्पष्ट किया था हिन्दुस्तानी बोली भारत के ज्यादा हिस्सों में बोली–समझी जाती है। संस्कृत और फारसी का मिश्रण होने से हिन्दू–मुसलमान दोनों ही बोल सकते हैं। फकीर और सन्यासी लोग भी यही बोलते हैं उसी समय में गांधी जी के मन में ये बात दृढ़ हुई थी कि हिन्दी–हिन्दुस्तानी ही राष्ट्रभाषा बन सकती है। दूसरी गुजरात शिक्षा परिषद में 1917 में उन्होंने राष्ट्रभाषा के लक्षण चित्रित किए। जिन पर फिर गौर करना जरूरी हैः

1. अमलदारों के प्रयोग के लिए सरल हो ऐसी भाषा बोली जानी चाहिए।
2. उस भाषा के ज़रिए भारतवर्ष के परस्पर धार्मिक, आर्थिक और राजकीय व्यवहार संभव होने चाहिए।
3. वह भाषा भारत वर्ष के बहुत सारे लोगों द्वारा बोली जानी चाहिए।
4. वह भाषा राष्ट्र के लिए सरल होनी चाहिए।
5. उस भाषा के प्रयोग मात्र से उसकी क्षणिकता या अल्पस्थायीत्व का भाव नहीं आना चाहिए।

उस समय अंग्रेजी भाषा के कई लक्षणों में से कोई भी अति प्रभावी नहीं थे सिवाय पहले लक्षण के। स्वतंत्रता के साठ वर्ष पूरे होने को आए हैं और

अंग्रेजी को निकाल बार नहीं कर पाए इसलिए अब वह हिन्दी के साथ ही एक से ज्यादा उपरोक्त लक्षणों वाली बनती नज़र आ रही है। परंतु अभी भी समय है। संभलों और कोशिश करेंगे तो हिन्दुस्तानी फिर से प्रचलित हो सकती है। वर्तमान परिस्थिति में क्या होना चाहिए उस संबंध में थोड़ा विश्लेषण होना जरूरी है।

आज़ादी मिलने के बाद देश में जो नेतागिरी उभर कर आई उसमें राममनोहर लोहिया का नाम चोटी की श्रेणी में आता है। आज़ादी के बाद सड़क पर और संसद में राष्ट्रभाषा के प्रति दमदार वकालत करने वालों में लोहिया का नाम शीर्ष स्थान पर है। उनकी समझ बड़ी स्पष्ट थी। गांधी जी की समझ का सही अर्थ बताने वालों में लोहिया जी अकेले व अनूठे हैं। उनका सबसे बड़ा तर्क हिन्दी लाने का नहीं परंतु अंग्रेजी हटाने का था। आज़ादी के तुरंत बाद के दिनों में ये संभव था। अंग्रेजी को इसीलिए जाना था कि क्योंकि भारतीय प्रसंग में वह भाषा सामन्त थी। आबादी का एक छोटा हिस्सा या अल्पमत ही इस भाषा पर काबू पा सकता था और ये सत्ता की भाषा बन जाए तो स्वार्थ के लिए शोषण का मजबूत हथियार बन जाती थी। लोहिया जी का दूसरा तर्क ये था कि अंग्रेजी को हटाना भी ज़रूरी है क्योंकि ये तब विश्व भाषा नहीं थी। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद भी यूरोप के सारे देश तथा दुनिया के अन्य विकासशील देश अपनी–अपनी भाषा में अपना विकास मार्ग ढूंढ़ रहे थे। जापान तक ने अपने युवा वर्ग को अमरीका–यूरोप भेजकर नये विज्ञान तथा टेक्नॉलॉजी का ज्ञान अर्जित करवाया और वापस लौटे वैज्ञानिकों ने अपनी भाषा में लिखवाया और इस तरह जापानी भाषा में विज्ञान व टेक्नॉलॉजी का विकास हुआ। इसका असर अगली पीढ़ियों पर उम्दा हुआ और नई पीढ़ी ने कई नई ईजादें अपनी मातृभाषा के ज़रिए ही की। आज सुजुकी, होन्डा, सेन्सुई, तोशीब, सोनी जैसी कंपनियां दुनिया के बाजारों पर कब्ज़ा जमाए हुए हैं और अमरीका और यूरोप के देशों के बाजार पर भी हावी है। भारत देश को ऐसा ही करना था पर आज़ादी के तुरंत बाद। लोहिया का अगला ध्यान देने योग्य तर्क भाषा के सामर्थ्य का है। पता नहीं क्यों हमारे देश के निर्णयकर्ता इस गलतफहमी में डूबे कि हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाएं समर्थ नहीं हैं। हिन्दी में पांच–छः लाख शब्द हैं और अंग्रेजी में शायद इससे आधे। प्रश्न इस्तेमाल करने का है। लोहिया जी ने कहा कि पारिभाषिक शब्दावली निश्चित करने वाली या कोश और पाठ्यपुस्तकें बनाने वाली कमेटियों के जरिए कोई भाषा समर्थ नहीं बनती। प्रयोगशालाओं, अदालतों, स्कूलों जैसी जगहों में इस्तेमाल के द्वारा ही भाषा सक्षम बनती है। लोहिया जी की भारत के राज्यों की भाषा की समझ भी काबिले–गौर है। उनका ये मानना था कि देश के तटवर्ती प्रांत हिन्दी के बजाए अन्य भाषाएं बोलते हैं। मध्य सूबों की भाषा है हिन्दुस्तानी और गैरतटीय उत्तर–पूर्व की भाषा है असमी। तटीय सूबों की भाषा को संसद में जगह देकर व्यवहार हिन्दी में चलाया जाता तो सभी भाषाएं विकसित हो जाती। यूरोप तथा अन्य देशों के प्रतिनिधि अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों तथा सम्मेलनों में अपनी भाषाएं बोलते हैं और उनसे अनुवादक अंग्रेजी तथा अंग्रेजी के अनुवाद

हिन्दी में पांच–छः लाख शब्द हैं और अंग्रेजी में शायद इससे आधे। प्रश्न इस्तेमाल करने का है। लोहिया जी ने कहा कि पारिभाषिक शब्दावली निश्चित करने वाली या कोश और पाठ्यपुस्तकें बनाने वाली कमेटियों के जरिए कोई भाषा समर्थ नहीं बनती। प्रयोगशालाओं, अदालतों, स्कूलों जैसी जगहों में इस्तेमाल के द्वारा ही भाषा सक्षम बनती है।

अन्य भाषाओं में कर देते है। ये व्यवस्था भारतीय संसद में बखूबी हो सकती थी। इस तरह अंग्रेजी हटाने का निर्णय लिया जा सकता था।

एक अन्य वर्ग इस बात को मानता रहा और बढ़ावा देता रहा कि हमें सहिष्णु होकर हिन्दी को बढ़ावा देना चाहिए जिसमें वो शनैः–शनैः अंग्रेजी का स्थान ले ले। पर ऐसा होना संभव था ही नहीं। अंग्रेजी को एक ही झटके में हटा देनी चाहिए थी तब ही हिन्दी अपने आप विकसित हो जाती। हिन्दी के सारे प्रचारक और लेखक जो राज्य श्रेय पाकर हिन्दी की सेवा करते हैं वे समझते हैं कि अंग्रेजी को हटाने का विध्वंसात्मक काम करने की बजाए हिन्दी बढ़ाने का रचानात्मक काम करें। इस भूल ने अंग्रेजी को देश में दृढ़ किया और हिन्दी राष्ट्रभाषा बनने से वंचित रह गई।

सरकारी कामकाज अंग्रेजी में ही चलता रहा और भारत सरकार के साथ अंग्रेजी में व्यवहार होने लगा। हिन्दी राजभाषा के रूप में अलंकार बन कर रह गई जो छः माह या सालाना कुछ कार्यक्रमों में शोभा बढ़ाने का काम करती रही। इन परिस्थितियों ने एक भयानक स्थिति पैदा की है।

यहां एक और बात गौरतलब है। हिन्दुस्तानी भाषा को खत्म करने की साजिश बन गई। हिन्दी का प्रचार–प्रसार करने वाले लोग सरकार के हिन्दी कार्यक्रमों में हावी होकर संस्कृत मय हिन्दी का उपयोग करने लगे। उधर उर्दू के हिमायती फारसी–अरबी शब्दों के प्रचूर उपयोग से उर्दू कठिन बनाने लगे। इस तरह आम आदमी इन दोनों के मिश्रण के कारण हिन्दुस्तानी भाषा से हटता चला गया। इस तरह हिन्दी के पंडितों ने और उर्दू के विशेष प्रेमियों ने इस देश को अपनी आम भाषा से वंचित रखा। उधर अंग्रेजी हटाई नहीं गई और आज बड़ी विचित्र परिस्थिति है कि अंग्रेजी के बिना भारत देश की सरकार का और निजी उद्योग धंधे का कारोबार ठप्प पड़ जाएगा। गांधी जी और फिर लोहिया जी हार गए मालूम होते हैं। ऐसी परिस्थिति में हिन्दी के लिए राह कहां है?

आज की परिस्थितियों का जायज़ा लें तो देश में विचित्र परिस्थिति है। राजभाषा हिन्दी जब तटीय राज्यों पर थोपी गई तो वहां विरोध हुआ इतना ही नहीं, परंतु प्रांतीय भाषा के प्रति आग्रह बढ़ा। यहां पर भी सहज–सामान्य रूख अपनाकर अपनी–अपनी प्रान्तीय भाषा का विकास किया होता तो कोई बात थी, परंतु एक बदले की भावना से प्रांतीय भाषा ने शिक्षा के क्षेत्र में अपना प्रभाव जमाया। सारे प्रांतों में सरकारी तथा म्युनिसिपल शालाओं तक, कॉलेजों तथा विश्विविद्यालयों में प्रांतीय भाषाएं जो मातृभाषाएं कहलाई उनके ज़रिए शिक्षा शुरू हो गई। हिन्दी और अंग्रेजी दोनों द्वितीय और तृतीय स्तर पर पहुंची। दक्षिण के राज्यों में अंग्रेजी को द्वितीय भाषा का दर्जा देकर हिन्दी को धकेल दिया और तृतीय भाषा में वह संस्कृत के साथ प्रतिस्पर्धा में आ गई। उच्च शिक्षण भी मातृभाषा में होने से विद्यार्थियों को सुविधा तो हुई परंतु शिक्षा का स्तर बहुत जल्द नीचे आ गया। याद रहे कि लोहिया जी ने कहा था कि अंग्रेजी हटाने की मुहिम के साथ–साथ हिन्दी का इस्तेमाल विज्ञान और टेक्नॉलॉजी के विषयों में भी करना है और शुरूआत में तकनीकी शब्दों का आसानी से रूपांतर न हो तो वैसा ही उसी भाषा में अपना लेना चाहिए। इससे अपनी भाषा समृद्ध होगी और धीरे–धीरे हिन्दी भाषा विकसित भी जाएगी। प्रांतीय भाषाएं भी इस तरह से अपनी प्रगति कर सकती थी। दुनिया के और देशों का अनुभव भी यही रहा है। पर हम ऐसा नहीं कर पाए। अंग्रेजी हटाई नहीं गई। सरकारी कामकाज अंग्रेजी में ही चलता रहा और भारत सरकार के साथ अंग्रेजी में व्यवहार होने लगा। हिन्दी राजभाषा के रूप में अलंकार बन कर रह गई जो छः

माह या सालाना कुछ कार्यक्रमों में शोभा बढ़ाने का काम करती रही। इन परिस्थितियों ने एक भयानक स्थिति पैदा की है। प्रांतीय भाषा सरकारी तथा म्युनिसिपल शालाओं की शिक्षा का माध्यम बनी और निजी क्षेत्र की ऊंची फीस लेकर पढ़ाने वाली शालाओं का माध्यम अंग्रेजी हो गया। प्रांतीय भाषा तो गरीबों की भाषा हो गई और उच्च सरकारी अमलदार तथा निजी व्यापार में पड़े हुए सुखी लोगों के बच्चे अंग्रेजी स्कूलों में जाकर शिक्षा लेने लगे। अलबत्ता कुछ होशियार बच्चे चाहे सरकारी या म्युनिसिपालिटी के स्कूलों में प्रांतीय भाषा में पढ़े हुए कॉलेजों में अंग्रेजी सीख–पढ़ कर इस उच्च वर्ग में जा मिले। पर इनका माद्दा बहुत ही कम या यों कहें कि नगण्य है। सन् 1919 तक भारत देश की परिस्थिति के ब्यौरे का सार दिया जाए तो यह कहा जा सकता है कि शासक वर्ग और उद्योग व्यापार के वरिष्ठ वर्ग के बीच पक्की साठ–गांठ हो गई और देश वाकई में शरद जोशी के शब्दों में इण्डिया और भारत में बंट गया। इण्डिया वाला वर्ग ''इण्डिया शाईनिंग'' में चला गया और बड़ा जनसमूह ''भारत सफरिंग'' की कक्षा में आ गया। इस सारे सौदे में हिन्दी को कुछ खास हासिल नहीं हुआ। उल्टे हिन्दी–हिन्दुस्तानी प्रचलित हो जाने के बजाए सरकारी फाइलों में दब सिमट कर रह गयी। मध्य राज्यों में भी उच्च सरकारी बाबुओं के बीच तो अंग्रेजी का ही बोल–बाला रहा।

सन् 1919 के बाद से देश और दुनिया में बड़ी तब्दीलियां आ गई। राज्य की भूमिका में कटौती आ गई और दुनिया के लगभग सभी बड़े और महत्वपूर्ण देश जहां प्रजातंत्र है वहां बाज़ार की भूमिका अहम बनती गई। गांधी जी ने 1917 में दूसरी शिक्षा परिषद के समय अंग्रेजी की जरूरत जिन दो वर्गों के लिए बताई थी उसमें पहला वर्ग, यानि स्वदेशाभिमानी होशियार नागरिक जो अंग्रेजी का ज्ञान देश व प्रांतीय भाषाओं में अनुदित करके पहुंचाना चाहते थे वो वर्ग पूर्णतः निष्प्राण हो गया। दूसरा वर्ग, जो व्यापार धंधे में धन कमाने के लिए अंग्रेजी का ज्ञान हासिल करना चाहता था, वो वर्ग बलवान हो गया। अब तो राज्य तथा सरकारें भी इस नीति को जोर–शोर से समर्थन करती है। 1919 तक उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अच्छी सरकारी संस्थाएं भी अंग्रेजी माध्यम से चली और 1965 तक ऐसा दौर आया कि इस देश के अच्छे डाक्टर, वैज्ञानिक तथा इंजीनियरों में से अच्छी संख्या में विदेश पलायन कर गए। 1980 के दशक में इन 'ब्रेन ड्रेन' ने काफी चिंता जगाई थी। सरकारी निवेश और खर्च से पढ़े इस देश के नौजवान विदेशों में डालर कमाने लगे। हाल ही में एक समय के भारत की ओर से अमरीका में रहे उच्चायुक्त और अच्छे अर्थशास्त्री ने यहां तक कह डाला कि यहां 'ड्रेन' जैसे हालात हैं तो 'ब्रेन' यहां क्यों रहेगा? बहरहाल मैं मुद्दा ये बना रहा हूं कि 1919 के बाद तो देश व स्वाभिमान को नाममात्र की बची लज्जा को भी तिलांजलि देकर पढ़ा लिखा युवा वर्ग दुनिया के हर कोने में जाने का आतुर हो गया और उसकी सफाई में 'वसुधैव कुटुबंकम' और 'सबै भूमि गोपाल की' दुहाई देते थकते नहीं हैं। दुनिया भर के देशों के विश्वविद्यालय देश के युवा वर्ग को लुभा रही हैं और इस देश में भी उन्होंने अपने पैर पसारने शुरू कर दिए हैं। गांव–गांव तक में 'इंग्लिश मिडियम' स्कूलों की भरमार होने लगी हैं। पेंट, कोट, टाई और स्कर्ट–ब्लाउज, टाई के साथ भारी थैलों में लदे–फंदे बच्चे गांवों की सड़कों पर भी देखे जा सकते हैं।

दुनिया भर के देशों के विश्वविद्यालय देश के युवा वर्ग को लुभा रही हैं और इस देश में भी उन्होंने अपने पैर पसारने शुरू कर दिए हैं। गांव–गांव तक में 'इंग्लिश मिडियम' स्कूलों की भरमार होने लगी हैं।

स्वाभाविक है कि ऐसी परिस्थिति में ये प्रश्न उठे कि

हिन्दी–हिन्दुस्तानी का भविष्य क्या है? बहुत, निराशाजनक परिस्थिति न होने पर भी कोई स्पष्ट चित्र उभर कर सामने नहीं आ पाता है। अंग्रेजी हावी हो रही है इस नकारात्मक और दुःखद सच्चाई के साथ–साथ प्रांतीय भाषाएं भी मुखरित हुई है इस बात पर गौर करना जरूरी है इस प्रांतीय भाषा के विकास का लाभ उठाना चाहिए। प्रांतीय भाषाओं को बढ़ावा देने तथा उन्हें गौरवांवित करने के लिए सरकारी स्तर पर सबसे अच्छा प्रयास ये होगा कि संसद के सदनों को प्रांतीय भाषा में बोलने की सुविधा मिले। पब्लिक हीयरिंग सिस्टम यानि माईक व्यवस्था के चलते आसानी से प्रांतीय भाषाओं का समानांतर अनुवाद की मदद से अविरत किया जा सकता है। तकनीक और वित्तीय संसाधनों की कमी का बहाना आज नही चल सकता, इसलिए ये काम होना चाहिए। प्रश्न ये है कि अनुवाद कौन सी भाषा में सुनें। ऐसा करने से अंग्रेजी की अहमियत और जरूरत दोनों खत्म हो जाएंगी। मेरी समझ से उपनिवेश देशों को छोड़कर बाकी सभी देशों में संसद अपनी भाषाओं में व्यवहार करती है अंग्रेजी में नहीं। इसलिए देर आए दुरूस्त आए के भाव से हमें देश की संसद हिन्दी तथा प्रांतीय भाषाओं में चलानी चाहिए। मैं यहां पर लोहिया जी का तर्क फिर दोहराना चाहूंगा। तटीय प्रांतों में अलग–अलग भाषा बोली जाती है। गैर तटीय प्रांतों में मध्य भारत के प्रांत हैं जहां हिन्दी–हिन्दुस्तानी का प्रचलन है। मात्र उत्तर–पूर्व के राज्य हैं जहां असमीया भाषा प्रमुख है। इस तरह हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाओं की मदद से यह देश चल सकता है। यहां मैं बताना चाहूंगा कि गूजरात विद्यापीठ में जहां हिन्दी प्रचार का काम जोरों से होता है, वहां 14 सितम्बर को 'हिन्दी दिवस' नहीं परंतु 'भारतीय भाषा दिवस' मनाया जाता है और विद्यापीठ में भारतीय भाषा भवन है जहां देश की हर मुख्य भाषा सीखने की सुविधा है।

प्रांतीय भाषाओं के संदर्भ में एक बात और कहना चाहूंगा। प्रांतीय भाषा के गौरव पर्व में सभी राज्य जुड़े और प्रांतीय भाषा में उच्च शिक्षा के सफल प्रयास किए गए। इन प्रयासों की एक गंभीर मर्यादा पिछले कई सालों मे प्रकट हुई है। अंग्रेजी की जरूरत के बारे में गांधी जी ने जिन दो मुद्दों का जिक्र किया था, उनमें से पहले मुद्दे के तहत गाधी जी ने यह कहा था कि अंग्रेजी की जरूरत ऐसे देशाभिमानियों के लिए है, जो अंग्रेजी सीख कर उस भाषा में पैदा होने वाला ज्ञान अपनी भाषा में लोगों को सिखाएं। ऐसा करने से दुनिया में बढ़ रहा ज्ञान ही अपनी–अपनी भाषाओं में विकसित हुआ है। इस संदर्भ में लोहिया जी ने जिन उदाहरणों को दिया था उनका जिक्र मैं फिर करना चाहूंगा। अक्सर यह देख गया है ईसा मसीह की बातों का उदाहरण हमेशा अंग्रेजी में दिया जाता है। लेख प्रांतीय भाषा में हो या हिन्दी में परन्तु ईसा मसीह का वाक्य या बाईबल की उक्ति हो तो तुरन्त हम उसे अंग्रेजी में लिख देते है। इस समझ के चलते कि ईसा मसीह अंग्रेजी में बोले थे। सच तो यह है कि अंग्रेजी भाषा उस समय थी ही नहीं और ईसा मसीह अरमैक जुबान में बोलते थे। हमारी मानसिकता उपनिवेश के समय की मानसिकता है। ठीक उसी तरह कार्ल मार्क्स की कही बातों का उदाहरण भी हम अंग्रेजी में देने की कोशिश करते है, जब कि मार्क्स बड़ी मुश्किल से अंग्रेजी सीख पाया था। वह जर्मन भाषा में लिखता था।

मुद्दे की बात पर लौटूं तो प्रांतीय भाषाओं का विकास करने के लिए उस माध्यम में पढ़ा देना पर्याप्त नहीं है जिन भाषाओं में नया ज्ञान पैदा होता है उन भाषाओं को सीख कर वह नया ज्ञान अपनी भाषा में लाएंगे तो हमारी भाषा भी समृद्ध होगी।

मुद्दे की बात पर लौटूं तो प्रांतीय भाषाओं का विकास करने के लिए उस माध्यम में पढ़ा देना पर्याप्त नहीं है जिन भाषाओं में नया ज्ञान पैदा होता है उन भाषाओं को सीख कर वह नया ज्ञान अपनी भाषा में लाएंगे तो हमारी भाषा भी समृद्ध होगी। कालांतर में जब हमारी भाषाएं भी समृद्ध हो जाएगी तो नया ज्ञान पैदा करने की क्षमता हासिल हो जाएगी तथा दुनिया की और भाषाएं हमसे सीखेंगी। हिन्दी में छः लाख से ज्यादा शब्द हैं, इतने अंग्रेजी में नहीं हैं। ऑक्सफोर्ड के अंग्रेजी शब्द कोश में तीन सौ से ज्यादा हिन्दी शब्दों को दर्शाया गया है जो आम अंग्रेजी बोलचाल में प्रचलित हो चुके हैं। हिन्दी तथा प्रांतीय भाषाओं में भी अंग्रेजी शब्दों की भरमार हो गई है, जो ज्यादा प्रचलित हैं उन्हें अपना लेने में कोई हर्ज नहीं होना चाहिए परन्तु जिन शब्दों का पर्याय न मिलें उन शब्दों को मूल स्वरूप में अपना लेने में कोई हरकत नहीं होनी चाहिए। मसलन अलमीरा तथा अचार पुर्तगाली शब्द हैं। शहर–कस्बों के हर छोटे–बड़े धंधे वाले पहले ग्राहक के पास से जो पैसा मिलता है उसे 'बोणी' कहते है। यह शब्द मूलतः हिन्दी प्रांतों के शब्द बुआई से आया है जो बोहना, बोहनी से होता हुआ बोणी के स्वरूप में आ गया है। इसी तरह मूल शब्दों का उपयोग होने से वह टूटता है, मंजता है और स्थिर हो जाता है। इस प्रक्रिया के सामने नाक–भौं चढ़ाने की जरूरत नहीं है। भाषा पंडितों को ज्यादा सहिष्णु होने की जरूरत है। भाषा बचाना यानि भाषा को मार देना। अंग्रेजी का एक शब्द है लॉर्ड। ब्रितानिया में ज़मींदारों को, राजा लॉर्ड का खिताब देते थे, फिर उनके न्यायालयों के न्यायाधीशों के लिए भी इस शब्द का उपयोग होने लगा। वकील न्यायाधीशों को माय लॉर्ड कह कर संबोधित करते थे। अपने देश का आम आदमी लॉर्ड शब्द का उच्चारण नहीं कर पाता था इसीलिए जब यह शब्द आम उपयोग में आया तो वह टूटा, मंझा और 'लाट' पर स्थिर हुआ। अरबी–फारसी उर्दू में बड़े अमलदार को साहेब कहा जाता है। इस देश में हर अंग्रेज अपनी गोरी चमड़ी की वजह से बड़ा अमलदार था। अतः साहेब तो जोड़ना ही पड़ता था तो लाट साहेब शब्द प्रचलित हो गया। बाद में यह शब्द न सिर्फ अमलदारों तक सीमित रहा, परन्तु हर श्रीमंत को भी और खासकर के बड़ आदमी के बेटों को भी लाट साहब का संबोधन मिला। कभी कोई सामान्य आदमी बड़े आदमी की तरह बर्ताव करता है तो उसे भी कहा जाता है कि क्या लाट साहब बन रहे हो। गौरतलब बात ये भी है कि यहां हमने अंग्रेजी का लॉर्ड शब्द अपनाया वहां अंग्रेजों ने साहेब शब्द अपना लिया। इसी तरह लेनटन का लालटेन, सिग्नल का सिंगल, रिपोर्ट का रपट, हॉस्पिटल का अस्पताल हो गया और ऐसे सैकड़ों शब्द हैं। भाषा पंडित अक्सर ये तर्क रखते हैं कि भाषा शुद्ध रूप से बोली जाए। ऐसा आग्रह कुछ हद तक सही है, परन्तु हर भाषा जब बोलचाल में उपयोग में आती है तो टूटती–मंजती है, उसे स्वाभाविक प्रक्रिया मानकर चलने देना चाहिए। गुजराती बोली में दो अंग्रेजी शब्दों का उदाहरण देकर बात और स्पष्ट करूंगा। आम गुजराती बोली में डाईरेक्ट और कान्टेक्ट शब्दों का प्रयोग डाईरेक और कोन्टेक की तरह होता है। इस बात की पूरी तस्दीक मुझे तब हुई जब एक विजीटिंग कार्ड में गुजराती में कोन्टेक लिख कर फोन नम्बर दिया गया था। ऊपर के वाक्य में ही आप चार अंग्रेजी शब्द पाएंगे जिनका हिन्दी में जस का तस उपयोग हो चुका है।

अब अंत में इस बात पर आऊं कि अंग्रेजी का क्या हो? एक बात तय है कि इसे अब दरिया में नहीं फेंका जा सकता। गांधी जी ने अंग्रेजी सीखने का दूसरा कारण जो बताया था उसकी प्रासंगिकता अब और भी बढ गई। जैसे मैंने आगे बताया कि 1999 के बाद पूरे विश्व में व्यापार के रास्ते खुल जाने से अंग्रेजी विश्व भाषा के रूप में तेजी से स्वीकृत होती जा रही है। हमें हिन्दी के प्रति ज्यादा गुमान न करते हुए इस बात को मानना होगा कि दुनिया में संपर्क भाषा अंग्रेजी बन रही है। मैंने इस मुद्दे पर

कई लोगों से बातचीत की है, उनके अनुभव व विचार जाने हैं। फ्रांस जैसे देश में भी जहां फ्रेंच भाषा के प्रति वहां के नागरिकों में अहंकार था अब वे अंग्रेजी के प्रति नर्म हुए हैं। मेरे कई विद्वान तथा संशोधक मित्र जो पिछले बीस–पच्चीस साल से फ्रांस जा रहे हैं उन्होंने ये फर्क महसूस किया है कि पहले होटलों में वहां के कर्मचारी अंग्रेजी में पूछने पर भी फ्रेंच में जवाब दिया करते थे, अब अंग्रेजी में जवाब देने की कोशिश करते हैं। मैं एक ऐसी फ्रेंच महिला को जानता हूं, जिसने हमारी संस्था में रहकर काम किया था, उसने अपना अभ्यास अंग्रेजी में लिखा और छापा। इसी तरह जापान की नई पीढ़ी अंग्रेजी में शिक्षा–दीक्षा ले रही है। दुनिया में व्यापार–धंधे के सिलसिले में अंग्रेजी छा चुकी है। परन्तु अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक संबंधों की चर्चा गोष्ठियां अब भी अपनी–अपनी भाषा में होती है और दोनों तरफ कुशल अनुवादक होते है और संवाद होता है। तो प्रश्न है कि क्या हम भारत देश में अंग्रेजी को स्वीकार कर लें? इस मुद्दें पर मैं अभी भी पूर्ण रूप से असहमत हूं। हमें अपनी राष्ट्रभाषा का विकास तो करना ही है।

भारत ही एक ऐसा देश है जहां हम कंप्यूटर की भाषा हिन्दी तथा प्रांतीय नहीं कर पाए हैं। मेरा अपना अनुभव दक्षिण अमरीका में ब्राजील तथा पूर्व एशिया के कई देशों का रहा है जहां हर देश ने इंटरनेट तथा कंप्यूटर की भाषा अपनी राष्ट्रीय भाषा रखी है।

जिस अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति की बात मैंने कही है वो सही होते हुए भी अधूरी है। जिन सारे देशों का जिक्र करके मैंने यह लिखा कि ये सारे देश अंग्रेजी अपना रहे हैं वो सिर्फ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए ऐसा कर रहे है। अपने देश में आंतरिक व्यापार तथा शिक्षा के लिए अपनी ही भाषा को मजबूत बना रहे हैं। भारत ही एक ऐसा देश है जहां हम कंप्यूटर की भाषा हिन्दी तथा प्रांतीय नहीं कर पाए हैं। मेरा अपना अनुभव दक्षिण अमरीका में ब्राजील तथा पूर्व एशिया के कई देशों का रहा है जहां हर देश ने इंटरनेट तथा कंप्यूटर की भाषा अपनी राष्ट्रीय भाषा रखी है। और व्यापार के संदर्भ में भी एक बाद ध्यान देने योग्य है। चीन व्यापार में आज भारत से आगे है और उसे भी अन्य देशों की भांति पता है कि भारत का बाजार बड़ा है। इसीलिए चीन ने भारत से हिन्दी शिक्षकों का बड़े पैमाने पर आयात किया है और इन शिक्षकों को ऊंची तन्ख्वाहें मिल रही हैं। वे ये मानकर चल रहे हैं कि भारत में तो व्यापार हिन्दी में ही होगा। एक तरह से चीन हमें दिशा दिखा रहा है। इस तरह मेरे मन में यह चित्र साफ होता जा रहा है कि हमें अपने देश में प्रांतीय भाषाओं तथा हिन्दी–हिन्दुस्तानी को नया बल प्रदान करना है। ये काम सिर्फ इस बात पर गौरव लेने से नहीं हो जाएगा कि आप संख्या बल में हिन्दी बोलने, समझने वालों की संख्या दुनिया में सबसे ज्यादा है या नहीं। भाषा का विकास ज्ञान विकास से होता है। आज एक नए उन्मेश की जरूरत है पुर्नप्रयास की जरूरत है कि हम प्रांतीय भाषाओं तथा हिन्दी–हिन्दुस्तानी में नए ज्ञान का विकास करें और बोलचाल में अंग्रेजी को कतई अहमियत न दें। औपनवेशिक मानसिकता को खत्म कर दें और गर्व से अपनी प्रांतीय भाषा तथा हिन्दु–हिन्दुस्तानी में व्यवहार करें। रहा सवाल तटीय सूबों का जहां और भाषाएं बोली जाती है। तकनीकी शब्दों को जिनका सरल और सहज अनुवाद सही न हो उसे ऐसे ही अपना लें। मैं इसका एक उदाहरण देना चाहता हूं। एक इंजीनियर अपने मातहत को मोबाइल फोन पर सूचना दे रहा था। वह सूचना गुजराती में दे रहा था। 'तु पहेला स्लीव काढ़ी लेजे, जो स्लीव बगड़ी गई हशे तो जेम बहार काढ़ीश ते फूलेट थई जशे,

अने जो स्लीव सारी हशे तो फरी पाछी ऐ रीतेज फिट थई जशे अने पछी चेटर नहीं संभलाय अने फल्क्चुएशन नहीं देखाय, इंटरमिटन्ट वार्निंग सिग्नल बंध थई जशे।' इन वाक्यों के जरिए अंग्रेजी नहीं जानने वाला इंजीनियर का मातहत अपनी भाषा में नई बात सीख लेता है। इस तरह से अपनी भाषा समृद्ध हो जाएगी। अंग्रेजी का उपयोग बंद होने से विचार तो बंद नहीं होगा। दक्षिण के प्रांतवासी प्रांतों से व्यवहार तो चलाएंगे या प्रांतीय भाषा सीखेंगे या अपने आप हिन्दी सीखेगे। चलचित्रों का माध्यम अब भी बहुत दमदार है। सारे देश को भाषा के एक सूत्र में पिरोने वाला माध्यम तो चलचित्र ही है। राज्यों की सरकारों द्वारा समितियों के गठन से राजभाषा राष्ट्रभाषा के विभागों के सहारे भाषा प्रचलित नहीं की जा सकती, वो तो एक महज आधार है। सरकारी व्यवहारों में से अंग्रेजी की जगह हिन्दी–हिन्दुस्तानी तथा प्रांतीय भाषा दाखिल कर देनी चाहिए। सरकारी तौर पर हिन्दी–हिन्दुस्तानी तथा अंग्रेजी दोनों के विभाग कर दें और अंग्रेजी को मुख्य न मानकर उसे अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार के लिए रख दें। ज्ञान के विषयों में हिन्दी तथा प्रांतीय भाषाओं का स्तर सुधारते चलें तो आने वाले पचास सालों में हमें कोई खतरा नहीं होगा। जो हम ऐसा नहीं करेंगे तो एक नया खतरा मंडरा रहा है उसकी बात रख कर मैं ये लेख पूरा करूंगा।

विश्व बाजार के खुल जाने से शिक्षा का बड़ी तेजी से व्यापारीकरण एवं निजीकरण हो रहा है। स्कूली शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तथा तकनीकी शिक्षा तब ऊंची फीस पर प्राप्त हो सकेगी। इससे ज्यादातर आम आदमी वंचित रहेगा। अलबत्ता ये तर्क जरूर दिया जा रहा है कि होशियार परन्तु गरीब विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति तथा आसान शर्तो पर बैंकों द्वारा कर्ज उपलब्ध होगा पर ये उच्च शिक्षा के लिए होगा और बहुत ही मर्यादित संख्या में होगा।

विश्व बाजार के खुल जाने से शिक्षा का बड़ी तेजी से व्यापारीकरण एवं निजीकरण हो रहा है। स्कूली शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तथा तकनीकी शिक्षा तब ऊंची फीस पर प्राप्त हो सकेगी। इससे ज्यादातर आम आदमी वंचित रहेगा। अलबत्ता ये तर्क जरूर दिया जा रहा है कि होशियार परन्तु गरीब विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति तथा आसान शर्तो पर बैंकों द्वारा कर्ज उपलब्ध होगा पर ये उच्च शिक्षा के लिए होगा और बहुत ही मर्यादित संख्या में होगा। ये मुद्दा वाकई नगण्य होगा। इसका लाभ मध्यम वर्ग के लोग ले पाएंगे। निम्न मध्यम वर्ग तथा गरीब वर्ग जो दो समय रोटी तो जुटा पाएगा परन्तु गुणात्मक शिक्षा से तो वंचित ही रहेंगे। तो जो ये छोटा सा वर्ग निजी शिक्षा के जरिए ऊपर जाएगा वह अपना ज्ञान अंग्रेजी में लेगा। चूंकि इन संस्थाओं के लिए अंग्रेजी से हिन्दी–हिन्दुस्तानी तथा प्रांतीय भाषाओं में ज्ञान की तब्दीली करके विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करने की बजाए सीधा अंग्रेजी में ज्ञान दे देना सस्ता साबित होगा। इस तरह अच्छे और नए ज्ञान पर अंग्रेजी हावी हो जाएगी। गरीब लोगों के लिए गरीब शिक्षा और गरीब शिक्षा के जरिए गरीब आजीविका यह विषचक्र मजबूत हो जाएगा। वैश्वीकरण और आर्थिक उदारतावाद से आमदनी की असमानताएं तीव्र होंगी और समाज में अशांति और संघर्ष की नई भूमिकाएं खड़ी होंगी। इसका इलाज बड़े पैमाने पर सरकारी तथा शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी लाद देना नहीं होगा। ऐसा करने से देश की अपनी भिन्नता, संस्कृति और सामर्थ्य मटियामेट हो जाएगा। इस भावी खतरे से बचना है, तो हमें इतना तो करना ही होगा।

1. स्कूली शिक्षा प्रांतीय भाषा में और जहां पर

स्थानीय भाषाएं हो वहां मातृभाषा में शिक्षा दी जाए। मसलन आदिवासी बहुल इलाकों में प्राथमिक शिक्षा भाषा की लिपि में मातृभाषा लिखना सिखाया जाए तो बच्चा जल्दी सिखेगा।

2. पांचवी क्लास के बाद हिन्दी–हिन्दुस्तानी भाषा सिखाई जाए जो एक विषय की तरह क्लास दस तक पहले और ग्यारह, बारह में भी सिखाई जाए।

3. ग्यारहवीं तथा बारहवीं कक्षा में व्यापार धंधे की दृष्टि से जरूरी अंग्रेजी भाषा सामान्य वर्गों के उपरांत सिखायी जाए ताकि आगे उच्च शिक्षा के दौरान उसे एक विषय की तरह विद्यार्थी पढ़ता रहे। बाकी उच्च शिक्षा और तकनीकी शिक्षा का ज्ञान भी प्रांतीय भाषाओं में दिया जाए। ये व्यवस्था माध्यमिक शिक्षा के साथ भी खड़ी की जा सकती है।

4. प्रांतीय तथा राष्ट्रीय भाषा में शिक्षा देने का मतलब यह होगा कि आने वाले पांच दस सालों में बड़ी गति से अंग्रेजी का ज्ञान प्रांतीय भाषाओं तथा हिन्दी–हिन्दुस्तानी में बदलना होगा। ये काम आज मेघ यज्ञ की भांति व्यापक स्तर पर व तीव्र गति से करना होगा। जो अच्छे शिक्षक और विद्वान लोग हैं फिर वे चाहे जिस भाषा में हो वे ही ये सब कुछ कर पाएंगे। इस प्रक्रिया में सबसे पहले हमें कंप्यूटर तथा इंटरनेट को प्रांतीय तथा हिन्दी–हिन्दुस्तानी में तेजी से बदलना होगा। हमारे देश में कंप्यूटर क्षेत्र में हार्डवेअर तथा सॉफ्टवेअर दोनों क्षेत्रों में वैश्विक स्तर की महारत हासिल है।

आपको शायद लगा होगा कि हिन्दी प्रचार के काम की गूजरात विद्यापीठ साठ बरस पूरे होने की खुशी में जब हीरक जयंती मना रहा है तब विद्यापीठ के कुलनायक कहीं बौरा तो नहीं गए? ऐसी बात कतई नहीं है। हिन्दी–हिन्दुस्तानी की प्रशस्ति में दो वाक्य लिख देना, देशभक्ति का परिचय देते हुए हिन्दी के पक्ष में नारे लगा देना या हिन्दी प्रचार के जरिए लाखों लोगों को सर्टीफिकेट बांट देने के आनन्द से ऊपर उठकर भारत देश की प्रांतीय भाषाओं तथा हिन्दी–हिन्दुस्तानी के समक्ष जो अति कठिन चुनौती है उसका उल्लेख मुझे अवश्य करना होगा। जब गांधी जी ने स्वतंत्रता आन्दोलन तथा स्वराज–स्वदेशी की मुहिम छेड़ी थी तब भाषा के हथियार को वे बखूबी पहचान सके थे। उपनिवेशवाद को दृढ़ करने में गुलाम देशों को अंग्रेजी के प्रचार से कैसा गुलाम बनाया जा सकता था और किस तरह मानसिकता बदली जा सकती थी इसका उन्हें पूरा ज्ञान था। इसलिए मातृभाषा में शिक्षा और हिन्दी–हिन्दुस्तानी सीखने–सिखाने पर उन्होंने बल दिया था और गूजरात विद्यापीठ के बारह ध्येयों में इन दोनों बातों को उन्होंने मजबूती से शामिल किया था। आज इस हिन्दी–हिन्दुस्तानी प्रचार कार्य के विद्यापीठ के अनुभव के साठ बरसों की हीरक जयंती के अवसर पर मैं सही लेखाजोखा प्रस्तुत न करूं और दो टूक बात न लिख दूं तो और उस महात्मा के प्रति अन्याय कर बैठूंगा। जो हमसे न हो पाया उसका इकरार करना आगे सुधरने की पहल सीढ़ी है। चढ़ाई कठिन है फिर भी जैसे कवि दुश्यंत ने कहा–

''कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता,
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो।'

सुदर्शन आयंगार,, कुलनायक, गूजरात विद्यापीठ अहमदाबाद (गुजरात)

मातृभाषा में शिक्षा : कुछ सवाल

विजय एस. वर्मा

मैं भाषा के सवाल पर पहले तो यह कहना चाहता हूं कि हमारी बातचीत में एक सफाई की आवश्यकता है। जब मातृभाषा कहते हैं तो शायद मन में सोच लेते हैं कि प्रदेश की भाषा का जिक्र हो रहा है। लेकिन मातृभाषा और प्रदेश की भाषा में बहुत फर्क है। एक भाषायी सर्वेक्षण उपलब्ध है जो सरकार ने करवाया है। इस समय लगभग हर प्रदेश में बहुत बड़े अनुपात में भाषायी अल्पसंख्यक मौजूद हैं, जिनकी मातृभाषा प्रदेश की भाषा से भिन्न है। कुछ प्रदेश ऐसे हैं जहां पर 40 प्रतिशत लोगों की मातृभाषा प्रदेश की भाषा से भिन्न है। अभी बड़े–बड़े प्रदेशों में यह सारा डेटा उपलब्ध है, छपा हुआ है और शायद वेबसाईट पर भी होगा, आप निकाल सकते हैं उसमें से।

इसलिए हम सतर्क रहें जब हम मातृभाषा कहते हैं, स्पष्ट हो जाएं कि हम मातृभाषा की बात कर रहे हैं या प्रदेश की भाषा की बात कर रहे हैं। जहां तक शिक्षा के माध्यम का सवाल है, ये किसी का विचार नहीं है, इस क्षेत्र में जो भाषा के ऊपर काम करते हैं कि अंग्रेज़ी नहीं पढ़ाई जानी चाहिए ऐसा हिन्दुस्तान में किसी का विचार नहीं है।

जो लोग मातृभाषा को माध्यम बनाने की बात करते हैं वे सब सहमत हैं कि अंग्रेजी एक भाषा के रूप में अवश्य पढ़ाई जानी चाहिए और अच्छी गुणवत्ता की अंग्रेजी पढ़ाई जानी चाहिए। जब भी पढ़ाई जाए अच्छी गुणवत्ता की पढ़ाई जाए। उसके नाम पर मखौल न किया जाए जैसाकि आजकल सरकारी स्कूलों में होने लगा है। ऐसा मजाक न किया जाए कि अंग्रेजी न जानने वाले शिक्षकों को कहा जाता है, तुम पहली कक्षा में पढ़ना शरू कर दो। स्टैण्ड फिर क्या है? स्टैण्ड यह है जहां तक मैं जानता हूं, समझता हूं और उसके ऊपर एक बहुत अच्छा विचार पत्र एनसीईआरटी ने लिखवाया है। फोकस ग्रुप की अध्यक्षता प्रो. रमा कांत अग्निहोत्री ने की है। वह बहुत बढ़िया क्वालिटी का विचार पत्र है। उससे आपकी सहमति या असहमति हो सकती है। लेकिन उसमें दुनिया भर का जो शोध है, भाषा शिक्षण के सवाल से जुड़ा हुआ, उसका निचोड़ सारे पत्रों के संदर्भ समेत वहां मौजूद है। मेरे ख्याल से इस समय सारी दुनिया में भाषा शिक्षण पर जो सर्वोत्तम विचार पत्र होंगे उनमें उसकी गिनती की जाएगी। इतना बढ़िया गुणवत्ता का लिखा हुआ है। उससे आप असहमत हो सकते हैं, वह अलग बात है। उसमें क्या कहा गया है मैं उसकी बातों को आपके सामने रख रहा हूं। उन्होंने यह कहा है कि मातृभाषा से बेहतर ज्ञान प्राप्ति का और कोई माध्यम नहीं हो सकता।

केवल प्रारंभिक वर्षों में ही नहीं, यानि पहली, दूसरी, तीसरी कक्षा में ही नहीं, लेकिन बाद में भी किस स्टेज पर मातृभाषा की जगह पर प्रदेश की भाषा लगाई जाए यह एक व्यावहारिक प्रश्न हो सकता है, सैद्धान्तिक प्रश्न नहीं है। सैद्धान्तिक प्रश्न तो यह है कि मातृभाषा के जरिए ही पढ़ाया जाए पर चूंकि व्यावहारिकता मांग करती है कि समय आने पर चौथी में, पांचवी कक्षा में किसी स्टेज पर मातृभाषा की जगह पर प्रदेश की भाषा आए अन्यथा उस बच्चे को आगे चलकर बहुत सी समस्याएं आ जाएंगी। यह स्टेण्डर्ड कुछ न कुछ जुड़ाव मातृभाषा में और प्रदेश की भाषा में शब्दावली का, वाक्यांशों का, व्याकरण का, होता ही है आमतौर पर।

तीसरी बात, जो बड़ी महत्वपूर्ण कही है वह यह है कि अंग्रेजी सीखने के लिए भी मातृभाषा से बेहतर और कोई माध्यम नहीं है। ज्ञान प्राप्ति के लिए तो कहा ही है फिजिक्स, केमेस्ट्री सीखने के लिए भी

मातृभाषा बेहतर माध्यम है। लेकिन अंग्रेजी सीखने के लिए भी मातृभाषा से बेहतर माध्यम नहीं है यह बहुत सारे समकालीन शोध पत्रों के आधार पर विचार पत्र में कहा गया है। यह तो मैं केवल आपको स्थिति बता रहा हूं। एक स्थिति और बता दूं संविधान की, जिसके ऊपर कभी किसी ने गंभीरता से ध्यान नही दिया। संविधान का अनुच्छेद ''350 अ'' सबको पढ़ लेना चाहिए। 350 'अ' यह कहता है कि किसी भी भाषायी अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चे को प्राथमिक स्तर तक अपनी मातृभाषा के जरिए सीखने का अधिकार है। इससे बढ़िया बात अगले वाक्य में है। अगर वे सुविधाएं राज्य सरकार ने उस बच्चे को उपलब्ध नहीं कराई तो भारत का राष्ट्रपति राज्य सरकार को निर्देशित कर सकता है सुविधाएं देने के लिए। मेरी जानकारी में भारतीय संविधान में यह एकमात्र अनुच्छेद है जो भारत के राष्ट्रपति को एक्ज्यूकेटिव पावर देता है, और कोई अनुच्छेद नहीं देता। बाकी सब जगह वह केबिनेट की सलाह पर एक्ट करेगा। आप समझ सकते हैं कि संविधान सभा में जो बहस हुई, उसमें भाषा के, मातृभाषा के इस सवाल पर कितनी प्रखरता से बहस हुई होगी और इस बहस को संतुलित ढंग से कैसे नापा गया यह कहकर कि हम राष्ट्रपति को अधिकार दे देते हैं राज्य सरकार को निदेर्शित करने का। मेरी जानकारी में अनुच्छेद ''350 अ'' का कभी उपयोग नहीं हुआ, न दुरूपयोग हुआ न सदुपयोग हुआ। वैसे ही पड़ा हुआ है यह भाषा का प्रावधान। मुझे जो लोगों ने बताया जिसके आधार पर कहते हैं कि मातृभाषा में शिक्षण होना चाहिए, वह विदेशों में हुई रिसर्च के ऊपर आधारित है। मैं केवल इतना ही कहना चाहूंगा कि कैलिफोर्निया में अगर स्पेनिश भाषी बच्चों को स्पेनिश भाषा में सिखाया जाए और यह उसका निष्कर्ष निकाला जाए की वे ज्यादा अच्छी तरह से अध्ययन कर पाते हैं तो कहां तक वह शोध हमारे देश में लागू हो सकता है, यह सोचने वाली बात है। क्योंकि स्पेनिश एक वृहद् भाषा है और उसमें शिक्षण के लिए काफी कुछ सामग्री उपलब्ध हैं, जो कि शायद हमारी मातृभाषाओं में अभी नहीं हैं। अगर मैं यहां सिद्धान्तों का सवाल नहीं भी उठाऊं तो हमारे दिमाग में एक व्यावहारिक सवाल है, जिसका मैं उत्तर चाहूंगा।

कहने को तो मेरी मातृभाषा हिन्दी है मगर वैसी हिन्दी नहीं, मेरी मातृभाषा भोजपुरी है। भोजपुरी और हिन्दी की व्याकरण में बहुत अंतर है। इसलिए उसको एक अलग हिन्दी की बोली कह देना सही नहीं होगा। एक प्रांत में बहुत सारी मातृभाषाएं होंगी, उसको ध्यान में रखने की जरूरत है। मैं अपना ही उदाहरण ले लूं। जब मैं स्कूल में पढ़ा करता था तो हमारे साथ कुछ बच्चे थे जो मगही बोलते थे, कुछ भोजपुरी बोलते थे, कुछ पंजाबी बोलते थे, कुछ हिन्दी बोलते थे, कुछ बंगला बोलते थे, कुछ उड़िया भी बोलते थे। अब 30–35 बच्चों की ऐसी कक्षा में शिक्षक कितनी भाषाओं में पढ़ाएगा और शिक्षण के लिए कैसे इन सभी भाषाओं में पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराई जाएगी? यह हमारे सामने एक बहुत बड़ा सवाल है, जिसका उत्तर मैं नहीं जानता हूं इस समय।

(11.12 मार्च 2006 को विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर में आयोजित सेमीनार में दिया गया वक्तव्य)

विजय एस. वर्मा, भौतिक शास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

गुम होती बोलियां

साधना सक्सेना

1961 की जनगणना के अनुसार हमारे देश में बोली जाने वाली कुल भाषाएं 1652 थीं। लेकिन 1981 की जनगणना में कुल भाषाओं की संख्या 106 ही रह गई। ऐसा क्यों हुआ होगा? आखिर जनसंख्या बढ़ने के साथ–साथ भाषाएं बोलने वालों की संख्या बढ़नी चाहिए न? क्या भाषाएं वाकई गुम होती हैं या फिर...

1961 की जनगणना के अनुसार हमारे देश में बोली जाने वाली कुल भाषाएं 1652 थीं। लेकिन 1981 की जनगणना में कुल भाषाओं की संख्या 106 ही रह गई। ऐसा क्यों हुआ होगा? आखिर जनसंख्या बढ़ने के साथ–साथ भाषाएं बोलने वालों की संख्या बढ़नी चाहिए न? क्या भाषाएं वाकई गुम होती हैं या फिर...

कुछ साल पहले की बात है। होशंगाबाद के पिपरिया शहर में 'हिन्दी दिवस' के उपलक्ष्य में मुझे एक वक्ता की हैसियत से आमंत्रित किया गया था। काफी दुविधा में थी कि क्या कहूं। हिन्दी भाषी होने के बावजूद भी मैं 'हिन्दी–भक्त' नहीं हूं और हिन्दी दिवस में वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया तो जाहिर है कि अपेक्षित था कि मैं हिन्दी भाषा की महानता के विषय में ही कुछ कहूं। हिन्दी भी वह जो किताबों में लिखी होती है, अखबारों में छपती है या फिर सरकारी आदेशो, निर्देशों में होती है, या फिर हमारी साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं में छपती है। यानी वह भाषा जिसका सहज बोलचाल, बातचीत

चर्चा की भाषा में अलग अपना परिष्कृत व औपचारिक स्वरूप है; जैसी हिन्दी शायद मैं यहां लिख रही हूं।

मेरी दुविधा कई स्तर की थी। हिन्दी ही क्यों? कौन–सी हिन्दी? हमें कैसे मालूम कि तेलगू या कश्मीरी या मराठी या उर्दू या एक कदम और आगे बढ़ें तो बुंदेली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, गोंडी, संथाली, सादरी, कोरकू इत्यादि इतनी श्रेष्ठ भाषाएं नहीं हैं, और बिना औपचारिक रूप से कहीं लिखे ही अंग्रेजी को सर्वश्रेष्ठ भाषा का सामाजिक दर्जा कैसे मिल गया है? मैं सोच रही थी कि क्या अपने देश की भाषाई विविधता की बात करूं? क्या मैं तथाकथित 'हिन्दी क्षेत्र' की विभिन्न भाषाओं का जिक्र करूं और बताऊं कि इस क्षेत्र में ही बहुत सारे हिस्से ऐसे हैं जहां खड़ी हिन्दी न बोली जाती है न समझ में आती है? क्या मैं लोगों की मातृभाषा व अस्मिता के गहरे रिश्तों की बात करूं या 'हिन्दी क्षेत्र' के स्कूलों की भाषा और बच्चों की भाषा की दूरी की बात करूं?

बहरहाल, मैं अपने प्रश्नों के बारे में सोचते–सोचते एक के बाद एक कई वक्ताओं को सुनती रही। किसी ने कहा कि हिन्दी सर्वश्रेष्ठ भाषा है क्योंकि यह सबसे विकसित भाषा है तो किसी ने कहा कि यह साहित्यिक है, सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली जाती है। किसी ने तर्क दिया कि हिन्दी भाषा आसानी से सीखी जा सकती है, यह सबसे समृद्ध है व इस भाषा में महान लेखक हुए हैं। एक अन्य वक्ता ने समझाया कि इसकी सबसे अधिक उपभाषाएं हैं, इत्यादि–इत्यादि।

यह सब तर्क इस उद्देश्य से भी दिए जा रहे थे कि हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया जाना चाहिए क्योंकि तार्किक रूप से यह मांग एकदम सही है। मैंने यह भी देखा कि दो–तीन तेलगू भाषा जो पिपरिया के स्टेट बैक में काम करते थे, कार्यक्रम के बीच में ही उठकर चले गए। मैं सोचती रह गई कि इस तरह के कथनों को कोरी कूपमंडूकता मानूं, अनभिज्ञता मानूं या विषय तय होने के कारण कुछ बोलने की बाध्यता मानूं। मुझे यह भी ध्यान में आया कि हिन्दी भाषियों में वास्तव में यह पूर्वाग्रह है कि हिन्दी तो सब समझते ही हैं यानी कि यह इतनी आसानी है कि सब समझ जाएंगे। और आमतौर पर देश की भाषाई विविधता की जानकारी लोगों में बहुत कम है। यह जानना कि लोगों के जीवन में उनकी अपनी भाषा का क्या महत्व होता है, इसको समझना हमें अपने से फर्क भाषा बोलने वालों के प्रति ज्यादा संवेदनशील व धैर्यवान बनाएगा। तब शायद उत्तर भारत के लोगों के लिए महाराष्ट्र से दक्षिण के सभी राज्यों की भाषाएं 'मद्रासी' नहीं होगी।

इसी उद्देश्य से मैंने 'हिन्दी दिवस' पर बहुभाषाई भारत की बात की जिसे अब इस लेख के माध्यम से सबके सामने रख रही हूं। मैं इस लेख के माध्यम से दो तरह के तथ्य रखने का प्रयास करूंगी जिनसे मुझे भारत जैसे देश की भाषाई विविधता को समझने में मदद मिली। एक प्रकार की जानकारी का संबंध हमारी संवैधानिक प्रक्रिया से है और दूसरी प्रकार की जानकारी भाषा–विज्ञान के दायरे में आती है।

संवैधानिक भाषाएं

हमारे देश के संविधान के आठवें शेड्यूल में अठारह भाषाओं को सूचीबद्ध किया गया है। इन भाषाओं को संवैधानिक भाषाओं का दर्जा मिला है। भारत की कोई भी राष्ट्रभाषा नहीं है जैसे रूस की 'रूसी' है या चीन की 'चीनी' है। सिद्धांततः भारत सरकार के साथ इन अठारह भाषाओं में से किसी भी भाषा में पत्र व्यवहार किया जा सकता है (हालांकि यह सिर्फ सिद्धान्त की बात है। व्यवहार में पत्र व्यवहार मात्र अंग्रेजी में, यदा–कदा हिन्दी में होता है) सबसे

पहले सन् 1950 में मात्र चौदह भाषाओं को संवैधानिक भाषा का दर्जा दिया गया था। ये भाषाएं थीं: आसामी, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, कश्मीरी, कन्नड़, मराठी, मलयालम, उड़िया, पंजाबी, तमिल, तेलगु, उर्दू और संस्कृत। 1967 में सिंधी व आठवें दशक में नेपाली, कोंकणी व मणीपुरी को भी शामिल कर लिया गया। इसलिए एक तरह से यह काफी अच्छी बात है कि हमारे जैसे बहुभाषाई देश की एक राष्ट्रभाषा नहीं है। परन्तु 1950 में हिन्दी को राष्ट्रीय शासकीय (ऑफिशियल) भाषा का दर्जा दे दिया गया था। देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी भाषा को भारत सरकार की भाषा और केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों के बीच संपर्क की भाषा का दर्जा दिया गया था और साथ ही यह प्रावधान था कि सभी राज्य हिन्दी समेत आठवें शैड्यूल में सूचीबद्ध किसी भी भाषा का इस्तेमाल प्रशासनिक कार्यों के लिए कर सकते हैं। हालांकि अंग्रेजी आठवें शैड्यूल में सूचीबद्ध भाषाओं में शामिल नहीं है फिर भी 1950 में यह प्रावधान किया गया था कि सरकारी कार्यों में पन्द्रह वर्षों तक यानी 1965 तक अंग्रेजी भी, हिन्दी के साथ एक सहभाषा की हैसियत से इस्तेमाल की जा सकती है। अब यह समय सीमा अनिश्चित काल के लिए बढ़ा दी गई है। इस प्रकार अंग्रेजी का दर्जा आज भी बरकरार है।

जनगणना और गुम होती भाषाएं

अब थोड़ी नज़र इस बात पर डालें कि आखिर हमारे देश में भाषाएं हैं कितनी? 1961 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार, जिसमें लगभग हर मातृभाषा को रिकॉर्ड करने का प्रयास किया गया था, हमारे देश में बोली जाने वाली 1652 भाषाएं थी। इसमें से करीब दो सौ भाषाएं ऐसी थीं जिनको व्यवहार में लाने वालों यानी बोलने वालों की संख्या दस हजार या उससे अधिक थी।

1971 की जनगणना के अनुसार कुल भाषाओं की संख्या सिर्फ 221 ही रह गई व 1981 में मात्र 106, ऐसा क्यों हुआ होगा? आखिर जनसंख्या बढ़ने के साथ–साथ विभिन्न भाषाएं बोलने वालों की संख्या बढ़नी चाहिए, बीस साल की इस अल्प अवधि में इतनी बड़ी संख्या में न तो भाषाएं लोप होती हैं न लोग अपनी मातृभाषा छोड़ देते हैं। सुमि कृष्णा, जिनकी पुस्तक 'इन्डियाज़ लिविंग लैंग्वेजेस' से मैंने कई जानकारियां ली हैं, ने कारण ढूंढ़ने का प्रयास किया कि आखिर ऐसा क्यों हुआ होगा। अपनी इस पुस्तक में उन्होंने लिखा है कि 1981 की जनगणना मुख्य भाषा के आधार पर हुई थी और कई मातृभाषाओं को समूह बनाकर उन सबको एक मुख्य भाषा के अन्तर्गत ही गिना गया।

श्री कृष्णमूर्ति ने 'लैंग्वेज एण्ड द स्टेट' पुस्तक में छपे अपने लेख में लिखा है कि 1971 की जनगणना के समय ही जनगणना आयुक्त को यह सलाह दी गयी थी कि वह ऐसी सभी भाषाओं को सूचीबद्ध न करवाएं जिनको बोलने वालों की संख्या दस हज़ार से कम हैं। जनगणना के दौरान आंकड़े कैसे इकट्ठे किए जाते हैं यह भी एक महत्वपूर्ण बात **है** परन्तु बात सिर्फ इतनी ही नहीं है। ऐसी मातृभाषाओं को सूचीबद्ध न किया जाना तो एक पहलू है ही, पर इन मातृभाषाओं या बोलियों को किसी प्रमुख भाषा का अपभ्रंश माना जाना कितना सही है यानी इस नीति के चलते भोजपुरी या मघई या छत्तीसगढ़ी, यहां तक की पंजाबी बोलने वालों को भी हिन्दी–भाषा ही कहा जाएगा चाहे उन्हें हिन्दी समझ में आती हो या नहीं।

इस प्रकार 1981 की जनगणना के अनुसार देश में हिन्दी बोलने व समझने वालों की संख्या छब्बीस करोड़ हो गई थी। यानी हिन्दी बोलने वालों की संख्या कुछ जनसंख्या का चालीस प्रतिशत आंकी गई। ऐसा किस समझ के तहत हुआ होगा? एक

कारण तो यही था कि 1981 की जनगणना में चालीस भाषाओं को हिन्दी भाषा की उपभाषाएं माना गया। यह वह पूरा क्षेत्र है जो 'हिन्दी भाषा क्षेत्र' कहलाता है। बल्कि सुमि कृष्णा के अनुसार आंकड़ों को ध्यान से देखने पर लगता है कि जैसे भारत की नब्बे करोड़ की जनसंख्या संवैधानिक अठारह भाषाओं में से कोई न कोई भाषा बोलती या इस्तेमाल करती ही है।

जिस प्रकार हिन्दी के अंतर्गत चालीस अन्य भाषाओं को इकट्ठा किया गया, उसी प्रकार का एक और उदाहरण देखें। 1961 में उड़िया बोलने वालों की संख्या डेढ़ करोड़ आंकी गई थी। 1981 तक आते–आते यह संख्या तीन करोड़ हो गई, परन्तु उड़ीसा में ही आदिवासी भाषाएं खरिया व भूमजी बोलने वालों की संख्या इन्हीं दो दशकों में क्रमशः एक लाख चालीस हजार से घटकर इक्यानवे हज़ार व उनचास हज़ार से घटकर अट्ठाईस हज़ार रह गई। खरिया व भूमजी बोलने वाले लोगों को, जो उड़िया से एकदम फर्क भाषाएं हैं, उड़िया भाषा के तहत मानना क्या सही है?

इसलिए 1971 व 1981 के जनगणना के आंकड़ों से हमारे देश की भाषाई विविधता का सही चित्र नहीं उभरता क्योंकि सन् 1991 की जनगणना के आंकड़े भी इसी नीति के तहत इकट्ठे किए गए थे इसलिए स्थिति कुछ बदली होगी ऐसी उम्मीद नहीं है।

अगड़ी भाषा–पिछड़ी भाषा

आठवें शैड्यूल में भाषाओं को शामिल करने या न करने व जनगणना के आंकड़ों में अलग से लिखने या न लिखने के पीछे निम्न तर्क दिए जाते है।

– भाषाएं बोलने वालों की संख्या कम होना,
– कम भौगोलिक क्षेत्र में इस्तेमाल होना,
– मुख्यभाषा का अपभ्रंश होना,
– लिपि न होना, छपा साहित्य न होना,
– ऐसी भाषाओं का कम विकसित होना यानी पिछड़ी हुई भाषाएं होना।

हम इन मुद्दों पर एक–एक करके विचार करते हैं।

भाषा बोलने या इस्तेमाल करने वालों की संख्या कम होना एक बेमानी तर्क है। क्योंकि यदि जानकारी इकट्ठी करने से पहले ही यह तय कर लिया जाएगा या यह मान्यता होगी कि उड़ीसा में सबकी भाषा उड़िया ही है या बिहार की सारी भाषाएं असल में हिन्दी से ही निकली है, तो कई भाषाओं और उन्हें इस्तेमाल करने वालों की सही जानकारी मिलने का सवाल ही नहीं उठेगा। पिछले चालीस–पचास सालों में स्थानीय बोलियों के विकास की बजाए उन पर पिछड़े होने या मुख्य भाषा का अपभ्रंश होने का ऐसा ठप्पा लग गया है कि लोग स्वयं भी अपनी भाषा की सही–सही जानकारी छुपा जाते हैं। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि आंकड़े इकट्ठे करना ऐसी प्रक्रिया है जिसमें आंकड़े करने व करवाने वालों की सामाजिक मान्यताएं भी अपना प्रभाव छोड़ती ही हैं।

इन सीमाओं, सिद्धांतों के बावजूद भी संख्या वाले मापदण्डों के कुछ विशिष्ट अपवाद हैं।

– संस्कृत मात्र कुछ गिने–चुने (कुछ सौ) लोगों की मातृभाषा है, फिर भी आठवें शैड्यूल में सूचीबद्ध है।

– आदिवासी भाषाओं जैसे संस्थाली जो 1981 में भी छत्तीस लाख लोगों की भाषा थी या भीली (साढ़े बारह लाख) या लाम्मी (बारह लाख) इत्यादि को संवैधानिक दर्जा नहीं मिला है जब कि कश्मीरी (चौबीस लाख) व सिंधी (बारह लाख) को यह दर्जा मिला है (सब आंकड़े

1981 की जनगणना से)।

– अवधी व भोजपुरी का क्षेत्र खड़ी हिन्दी बोली के क्षेत्र से अधिक व्यापक है फिर भी अवधी व भोजपुरी आठवें शैड्यूल की भाषाएं नहीं हैं। इसी प्रकार काश्मीर में आम लोगों की भाषा कश्मीरी है परन्तु लम्बे समय तक काश्मीर की भाषा उर्दू ही मानी गई।

– ऐसा कोई ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं है कि बोलियां आज की औपचारिक हिन्दी का बिगड़ा हुआ स्वरूप हैं। बल्कि तार्किक रूप से उभरता है कि औपचारिक भाषाएं स्थानीय बोलियों से ही निकली हैं, बनी हैं।

– लिपि के बारे में सुमि कृष्णा अपनी पुस्तक में लिखती है, कि सबसे बदतर यह मत है कि लिपि ही भाषा है। उनके अनुसार लिपि की खोज मात्र पांच हजार वर्ष पहले की बात है व अक्षर लिपि का विकास मात्र. तीन हजार वर्ष पहले शुरू हुआ। जब कि भाषाएं तो उससे बहुत पहले से हैं।

लिपि–साहित्य का दुष्चक्र

लिपि न होना व छपा साहित्य न होना वास्तव में एक दुष्चक्र है। किसी भाषा का छपा साहित्य न होना यह नहीं दिखाता कि इस भाषा का साहित्य है ही नहीं या है भी तो समृद्ध या विकसित नहीं है। यह मात्र इतना दिखाता है कि उस विशेष भाषा का

साहित्य लिखा नहीं गया, छपा नहीं। और यह न हो पाना राजनैतिक प्रक्रिया का परिणाम हैं। भाषाविद्‌ों के अनुसार भाषा और लिपि का कोई संबंध नहीं है। लिपि संकेत मात्र है और किसी भी लिपि में कोई भी भाषा लिखी जा सकती है। जैसे एक लिपि देवनागरी है जिसमें आज तक हिन्दी, मराठी व संस्कृत लिखी जाती है। संथाली भाषा लिखने के लिए देवनागरी, रोमन व बंगला लिपि का उपयोग हुआ है परन्तु साथ ही इसके लिए 'ओलचिकी' नामक लिपि का विकास भी हो रहा है; या जैसे स्वतंत्रता के पहले व बाद में भी काफी वर्षों तक हिन्दी या हिन्दुस्तानी फारसी लिपि में लिखी जाती थी। उत्तर प्रदेश व पंजाब में पढ़े हमारे दादा व परदादाओं को हिन्दुस्तानी भाषा आने के बावजूद भी देवनागरी लिपि में पढ़ना–लिखना नहीं आता था।

इससे भी आगे बढ़ें तो जो भाषाएं लिपिबद्ध हो गई, उनको आगे और सरकारी मान्यता मिली जैसे साहित्य अकादमी लगभग इक्कीस भाषाओं को मान्यता देती है। प्राथमिक और माध्यमिक शालाओं में शिक्षा के लिए साठ से अधिक भाषाओं को मान्यता प्राप्त है।

बाकी भाषाएं पिछड़ी नहीं

इस पृष्ठभूमि में क्या यह सरल सा लगने वाला निष्कर्ष मान लेना सही होगा कि बाकी भाषाएं पिछड़ी हुई हैं, कम विकसित हैं, कम समृद्ध हैं, इसलिए पीछे छूट गई हैं?

इस मुद्दे पर भाषाविद्‌ों का कहना है कि भाषाएं इस्तेमाल होने से ही समृद्ध होती हैं। वे लोगों के जीवन और संस्कृति का हिस्सा होती हैं। भाषाओं की समृद्धि मात्र उनके लिखे या न लिखे होने पर निर्भर नहीं होती। भाषाविद्‌ों का यह भी मत है कि हर भाषा का एक ढांचा होता है, शब्दावली होती है, वाक्य संरचना के नियम होते हैं चाहे उसका लिखित स्वरूप प्रचलित हो या न हो। यानि भाषा–विज्ञान की दृष्टि से बोलियां भी पूर्ण विकसित भाषाएं हैं।

इसलिए ये मान्यता गलत है कि भाषा की तुलना में बोलियां पिछड़ी हैं या कम समृद्ध हैं। गैरबराबरी सामाजिक व राजनैतिक प्रक्रिया का परिणाम है जिससे कुछ भाषाएं 'गंवारू व अशिष्ट' कहलायी जाने लगती हैं लेकिन कुछ गिनी–चुनी भाषाएं जिनको संवैधानिक या साहित्यिक या शैक्षिक या व्यवसायिक संस्थाओं से मान्यता मिल जाती है, उनकी सामग्री छपने लगती है, वे आगे बढ़ जाती हैं। चाहे वे कम लोगों के द्वारा ही इस्तेमाल हो रही हो।

लोगों की अपनी मातृभाषा से गहरे भावनात्मक लगाव के साथ–साथ अपनी अस्मिता, आत्मसम्मान व आत्मविश्वास जुड़ा होता है। इसकी गहरी सांस्कृतिक जड़ें होती हैं जिन्हें आंकड़ों से छुपाकर मिटाया नहीं जा सकता। इसलिए किसी एक भाषा की महानता या प्राचीनता या अन्य कई मापदण्डों का जिक्र करते हुए यदि हम यह भी ध्यान रख पाएं कि हमारे देश में बहुत–सी और भाषाएं भी इसी स्तर की हैं तो हम भाषाई विवादों को ज्यादा रचनात्मक मोड़ दे सकेंगे।

(एकलव्य द्वारा प्रकाशित संदर्भ से साभार)

साधना सक्सेना, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

कौन भाषा, कौन बोली?

रमा कांत अग्निहोत्री

''अध्यापक स्वयं को शुद्ध व मानकीकृत भाषा का रखवाला मान लेते हैं। प्रश्न समझ व दृष्टिकोण का है। पहली बात बच्चा जिस भाषा को लेकर स्कूल आता है वह पूर्णरूप से व्याकरण युक्त है। दूसरी बात उसकी भाषा उसकी शिक्षा का माध्यम नहीं बन पाई यह एक राजनैतिक, सत्तागत प्रश्न है।''

''अध्यापक स्वयं को शुद्ध व मानकीकृत भाषा का रखवाला मान लेते हैं। प्रश्न समझ व दृष्टिकोण का है। पहली बात बच्चा जिस भाषा को लेकर स्कूल आता है वह पूर्णरूप से व्याकरण युक्त है। दूसरी बात उसकी भाषा उसकी शिक्षा का माध्यम नहीं बन पाई यह एक राजनैतिक, सत्तागत प्रश्न है।''

हर सामान्य व्यक्ति अपनी भाषा खूब अच्छी तरह से बोलता व समझता है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि हर व्यक्ति यह समझे कि वह भाषा के बारे में काफी कुछ जानता है। असल में सच तो यही है कि हर व्यक्ति अपनी भाषा के बारे में बहुत कुछ जानता है। लेकिन इस भाषागत ज्ञान के बारे में आम आदमी अक्सर सचेत नहीं होता। वास्तव में उस ज्ञान के बारे में उसके लिए कुछ भी विशेष कहना संभव नहीं हो पाता। यदि यह कहा जाए कि आपकी अपनी भाषा का पूर्ण व्याकरण आपके पास है– आपके दिमाग में– तो शायद कुछ अटपटा–सा लगे। लेकिन यह बिल्कुल सच है। दूसरी तरफ भाषा के बारे में जो बातें लोग अक्सर कहते हैं वे एकदम निराधार अवधारणाओं से जुड़ी रहती हैं। इन निराधार अवधारणाओं के कारण काफी सामाजिक, मानसिक व शैक्षिक नुकसान होता है। यदि हम सब भाषा की प्रवृति को समझने का प्रयास करें तो शायद इस नुकसान से बचने का कोई साधन निकले।

व्याकरण की समझ कितनी

अपनी भाषा के बारे में आपका ज्ञान पूर्ण एवं त्रुटिरहित है। अपनी भाषा बोलने व समझने में आप कभी गलती नहीं करते। यदि करें तो तुरन्त उसमें सुधार कर लेते हैं। इस तरह यदि कोई दूसरा आपकी भाषा बोलने में गलती करता है तो आप उसे तुरन्तु पकड़ लेते हैं।

आप नित नए–नए वाक्य बोल व समझ सकते हैं। यही नहीं आपको यह भी ज्ञात है कि किस सामाजिक संदर्भ में कैसी भाषा उचित रहेगी। लेकिन इस ज्ञान के बारे में मुक्त रूप से चर्चा करना केवल भाषाविद्ों तक ही सीमित रह गया। और भाषाविद् जिस भाषा में बात करते हैं वह आम आदमी की समझ में आती नहीं।

उदाहरण के लिए, यह तो हर हिन्दी भाषा जानता है कि–

गीता खाना खाता है।

ठीक वाक्य नहीं है। कुछ सोचकर शायद वह यह भी बता दे कि 'गीता' स्त्रीलिंग है इसलिए क्रिया पुल्लिंग नहीं हो सकती। (गो कि भारत में ही ऐसी

अनेक भाषाएं हैं जिनमें कर्ता के पुल्लिंग या स्त्रीलिंग होने से क्रिया पर कोई असर नहीं पड़ता– अंग्रेजी भी ऐसी ही भाषा है)। लेकिन निम्न दो वाक्यों में यह नियम लागू नहीं होता।

मोहन ने खाना खाया।

गीता ने खाना खाया

'मोहन' पुल्लिंग है व 'गीता' स्त्रीलिंग फिर भी दोनों ने 'खाया'। यह कहना कि–

गीता ने खाना खाई।

गलत है। इसी तरह यदि आप दुविधा में पड़े हिन्दी भाषी का ध्यान निम्न दो वाक्यों–

मोहन ने रोटी खाई।

गीता ने रोटी खाई।

की ओर ले जाएं, तो शायद कुछ कठिनाई से वह यह बता पाए कि यदि कर्ता के सामने 'ने' आ जाए तो क्रिया कर्म से मेल खाती है। सो कर्ता कोई भी हो– पुल्लिंग या स्त्रीलिंग– पर 'ने– आने पर

..... *खाना खाया* (खाना पुल्लिंग है)

..... *रोटी खाई* (रोटी स्त्रीलिंग है आदि)

लेकिन निम्न दो वाक्यों के बारे में हिन्दी भाषी क्या कहेगा!

मोहन ने गीता को मारा।

गीता ने मोहन को मारा।

ऐसी ही समस्याओं को लेकर भाषा वैज्ञानिक भाषा से जूझते रहते है। अब देखिए नाः

गीता मोहन को मारती है।

तो सही है लेकिन

गीता ने मोहन को मारी।

ठीक नहीं है।

वास्तव में जैसे ही एक हिन्दी भाषी ऐसा कोई वाक्य सुनता है उसे मालुम होता है कि कोई अहिन्दी भाषी हिन्दी बोलने का प्रयास कर रहा है। साफ है कि हर व्यक्ति अपनी भाषा का व्याकरण पूरी तरह से जानता है। लेकिन उस व्याकरण का अध्ययन करना व उसके बारे में बातचीत कर सकना बिल्कुल अलग बात है; कठिन बात है। इसलिए हमारे यहां कहते है– मोक्षार्थे व्याकरणमधितव्यम्।

खैर हमें तो उस ज्ञान के बारे में बातचीत करनी थी जिसका आधार अवैज्ञानिक व बेबुनियाद अवधारणाएं हैं। हर सामान्य व्यक्ति इस तरह के ज्ञान पर आधारित अनेक विश्वास या मान्यातएं पाल लेता है, निर्णय ले लेता है, लोगों को अलग श्रेणियों में बांट लेता है और कुछ से घृणा व कुछ से प्यार करने लगता है।

इन निराधार मान्यताओं को समझना आवश्यक है। बिना समझे इनसे छुटकारा पाना संभव नहीं।

कौन भाषा कौन बोली

एक मुख्य मसला है भाषा व बोली का। किसी भी सामान्य व्यक्ति से पूछकर देखिए, वह अत्यधिक विश्वास से आपको भाषा व बोली में अंतर बताने लगेगा। कहेगा, ''भाषा का व्याकरण होता है, बोली का नहीं। भाषा की लिपि होती है, बोली की नहीं। भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है जब कि बोली का स्थानीय। भाषा मानकीकृत व परिमार्जित होती है, बोली नहीं। जिसका प्रयोग साहित्य, पत्राचार, दतरों, अदालतों आदि में हो वह भाषा और जो बोलचाल के लिए इस्तेमाल हो वह बोली। भाषा में शुद्ध–अशुद्ध का प्रश्न उठता है, बोली में सब चलता है आदि, आदि।''

वास्तव में इस तरह के सभी तर्क गलत हैं, समाज के लिए अत्यधिक हानिकारक हैं। भाषाई दृष्टि से भाषा व बोली में कोई अन्तर नहीं। दोनों का

व्याकरण होता है। दोनों नियमबद्ध हैं। किसको भाषा कहा जाएगा और किसको बोली यह एक सामाजिक प्रश्न है; राजनैतिक प्रश्न है। सत्ताधारी व पैसे वाले लोग अक्सर जो बोली बोलते हैं, वह भाषा कहलाने लगती है। उसी के व्याकरण व शब्दकोष लिखे जाते हैं। उसी में साहित्य लिखा जाता है। स्कूलों में शिक्षा का माध्यम बनकर वही बोली मानकीकृत भाषा बन बैठती है। उसी से मिलते–जुलते, बात–चीत करने के अन्य तरीके उस 'भाषा की बोलियां' कहलाने लगते हैं। भाषा व समाज के इस रिश्ते को समझना आवश्यक है।

शायद यह ठीक ही कहा गया है कि भाषा केवल एक सशस्त्र बोली है। मुख्य प्रश्न वास्तव में दृष्टिकोण का है। एक गरीब बच्चे की भाषा को एक मानकीकृत भाषा के मापदंड से निरन्तर नापना कहां तक जायज है?

एक ही मापदण्ड क्यों?

व्याकरण के प्रश्नल को लीजिए। हिन्दी का अपना व्याकरण है। लेकिन ब्रज, अवधी व मैथिली का भी अपना व्याकरण है। हिन्दी से कदाचित अलग है। हिन्दी व्याकरण को मापदण्ड मानकर ब्रज के व्याकरण को क्यों देखा जाए? सदियों से लोग संस्कृत, गीक, लेटिन आदि को आधार मानकर संसार की सभी भाषाओं में शब्दों के आठ कारकगत रूप तलाश करते रहे हैं। हिन्दी के हर व्याकरण में आपको संस्कृत की ही तरह आठ कारक रूप दिखाने का प्रयत्न रहेगा। लेकिन वास्तव में हिन्दी में तीन ही कारकों के अनुसार शब्द परिवर्तन होता है यथाः

'लड़का' आदि

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	लड़का	लड़के
कर्म/अन्य	लड़के	लड़कों
संबोधन	हे लड़के!	हे लड़को!

'किताब' आदि

कर्ता	किताब	किताबें
कर्म/अन्य	किताब	किताबों
संबोधन	हे किताब!	हे किताबो!

हिन्दी की कारक व वचन संरचना समझने के लिए इससे अधिक आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार हिन्दी व्याकरणसे अन्य भाषाओं को नापना उचित नहीं है। हिन्दी का।

नन्द का नन्दन कदम्ब के पेड़ के नीचे धीरे–धीरे मुरली बजाता है।

ब्रज भाषा में

नन्द को नन्दन कदम के तरू तर धीरे धीरे मुरली बजावै।

हो जाएगा। और मैथिल– कोकिल विद्यापति ने इसे यूं कहा;

नन्दन नन्दन कदमक तरूतर धीरे धीरे मुरली बजाव।

मैथिली का नियम है कि 'नन्द' व 'नन्दन' में जो संबंध है वह 'क' के प्रयोग से दिखाया जाएगा; ब्रज में वहीं 'को' के व हिन्दी में वह 'का' के प्रयोग से। तोः

हिन्दी : *नन्द का नन्दन*

ब्रज : *नन्द को नन्दन*

मैथिली : *नन्दन नन्दन*

यह कहना कि ब्रज या मैथिली भाषा को सदैव 'नन्द का नन्दन' ही कहना चाहिए उचित न होगा। ऊपर के उदाहरणों से यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि कब हिन्दी– ब्रज–मैथिली एक दूसरे से घुल मिल जाएंगी और कब अपना–अपना स्वतंत्र रूप दिखाएंगी, यह कहना भी कोई आसान काम नहीं।

आप मैथिली, सिंधी, कोंकणी, नेपाली या मणिपुरी को कब 'भाषा' का दर्जा देना चाहते हैं, यह एक राजनैतिक प्रश्न है, भाषाई नहीं।

सत्ता से जुड़ सवाल

व्याकरण को लेकर शुरू–अशुद्ध का प्रश्न भी बार–बार सामने आता है। विशेषकर अध्यापक स्वयं को शुद्ध व मानकीकृत भाषा का रखवाला मान लेते हैं। मैंने पहले भी कहा कि प्रश्न समझने व दृष्टिकोण का है। पहली बात– बच्चा जिस भाषा को लेकर स्कूल आता है वह पूर्णरूप से व्याकरण युक्त है। दूसरी बात– उसकी भाषा उसकी शिक्षा का माध्यम नहीं बन पाई यह एक राजनैतिक, सत्तागत प्रश्न है। तीसरी बात– मानकीकृत भाषा के सीखने के प्रयास में जो अशुद्धियां बच्चा करता है वे निराधार या बेतरतीब नहीं होती, उनकी अपनी संरचना होती है। चौथी बात– किसी अध्यापक के शुद्ध करने से बच्चे अपनी गलती एकदम सुधार नहीं लेते। गलतियां समय आने पर ही सुधरती हैं। पांचवी बात– कोई भी बच्चा, कोई भी भाषा (पहली, दूसरी या दसवीं) बिना 'गलतियां' किए नहीं सीखता।

साहित्य के प्रश्न को ही लीजिए। अक्सर कहा जाता है कि जिसमें शिष्ट साहित्य लिखा जाए वह भाषा, शेष उस भाषा की बोलियां। आम आदमी आज यही समझता है कि खड़ी बोली हिन्दी की मानकीकृत भाषा है, साहित्य उसी में लिखा जाता है; अखबारों दफ्तरों आदि में यहीं प्रयोग होती है। ब्रज, अवधि, मैथिली आदि हिन्दी की बोलियां हैं।

कैसी विडम्बना है– अवधी, जिसमें तुलसी कृत रामचरित मानस लिखा गया; ब्रज, जिसमें सूरदास ही नहीं अपितु अनेक हिन्दु व मुसलमान लेखकों ने कहान साहित्य की रचना की व मैथिली, जिसमें विद्यापति ने लिखा– सब आज हिन्दी की माताएं न होकर उसकी बोलियां हो गई। जब राजनीति व सत्ता का केन्द्र कन्नौज था, तो साहित्य की शिष्ट भाषा थी 'अपभ्रंश'। खड़ी बोली ब्रज, अवधी आदि का जो भी रूप रहा हो, उसकी बोलियां कहलाई। इसी तरह जब राजनैतिक केन्द्र ब्रज–क्षेत्र बना तो शिष्ट साहित्य की भाषा 'ब्रज' हो गई और दिल्ली, मेरठ की खड़ी बोली उसकी बोली कहलाई। शासन व सत्ता का केन्द्र दिल्ली, मेरठ हुआ तो ब्रज, अवधी आदि हिन्दी की बोलियां कहलाने लगी। वही बात कि सवाल दरअसल भाषा व राजनीति के संबंध को समझने का है। उसको समझकर एक ऐसा सजग दृष्टिकोण बनाने का है जो वैज्ञनिक व संरचनात्मक हो। इसलिए साहित्य के आधार पर भाषा व बोली में अन्तर संभव नहीं।

कोई भी लिपि, कोई भी भाषा

लिपि के प्रश्न को लीजिए। अक्सर लोग ऐसे बात करते हैं। जैसे भाषा व लिपि का कोई जन्मजात संबंध हो। वास्तव में संसार की सभी भाषाएंएक ही लिपि में लिखी जा सकती है। और एक ही भाषा को लिखने के लिए आप संसार की सभी लिपियों का प्रयोग कर सकते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी व अंग्रेजी भाषा व देवनागरी व रोमन लिपि को लीजिए:

हिन्दी (देवनागरी)

मोहन खेल रहा है।

हिन्दी (रामन):

mohan khel rahaa hai

अंग्रेजी (देवनागरी):

मोहन इज़ प्लेइंग।

भारत की अनेक भाषाएं देवनागरी में लिखी जाती हैं व एक संस्कृत को लिखने के लिए भारत में ही अनेक लिपियों का प्रयोग होता है। ऐसा भी नहीं है कि लिपि होने से ही किसी भाषा में साहित्य की संभावना होती है। ऋगवेद जैसे साहित्य के लिए

सदियों किसी लिपि की आवश्यकता नहीं पड़ी। सारे भारत में फिर भी ऋगवेद का वाचन एक ही तरह से होता है। गांव–गांव में रामचरित मानस नित गाया, सुना जाता है– लिपि की कोई आवश्यकता नहीं। भाषा प्राचीन है; लिपि अभी कल का आविष्कार। लिपि होने न होने से भाषा–बोली में अंतर करना संभव नहीं। आप कुछ दोस्त मिलकर अपनी भाषा के लिए बड़ी आसानी से अपनी एक अलग लिपि बना सकते हैं। उसे कितना राजनैतिक समर्थन मिलेगा वह एक अलग बात है। संथाली आज कई लिपियों में लिखी जाती है– देवनागरी, रोमन, बंगला, उड़िया व ओल चिक्की। इनमें से कौन–सी लिपि मानकीकृत हो जाएगी यह एक राजनैतिक प्रश्न है। अभी द्वन्द्व जारी है।

विस्तृत क्षेत्र व व्यापक प्रयोग की खूब ठहरी। बार बार कहो कि हिन्दी का क्षेत्र विस्तृत है, प्रयोग व्यापक। जगह–जगह पोस्टर लगाओं। अखबारों में नित इश्तहार दो, रेडियो व टी.वी. पर प्रयोग करो और न जाने क्या–क्या बातों–बातों में हिन्दी को 'संवैधानिक राजभाषा' से 'राष्ट्रभाषा' का दर्जा दे दो। शिक्षा का माध्यम हिन्दी कर दो। और फिर कहो– लो भाई हिन्दी हुई भाषा व ब्रज, अवधी मैथिली, बुन्देली, भोजपुरी आदि उसकी बोलियां। इन 'बोलियों' को बोलने वालो की अपार संख्या को हिन्दी में जमा कर दो और फिर कहो कि देखो, करोड़ों लोग हिन्दी बोलते हैं, कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक। थोड़ा धीरज रखकर ध्यान से सोचिए– हिन्दी आखिर कहां बोली जाती है? मानकीकृत हिन्दी का प्रयोग कहां–कहां होता है?

क्या आप या आपके दोस्त घर पर या आपस में हिन्दी बोलते हैं या आप भोजपुरी, अवधी, अवधी, मैथिली, मघई, बुन्देली, ब्रज आदि–आदि बोलते हैं। मानकीकृत हिन्दी शायद मेरठ, इलाहाबाद व बनारस के कुछ हिस्सों में बोली जाती है। क्या चम्बा व हमीरपुर (हिमाचल), रोहतक व भिवानी (हरियाणा), जैसलमेर व सवाई माधोपुर (राजस्थान), छपरा व बलिया (बिहार), छिंदवाड़ा (मध्यप्रदेश) व रायपुर में मानकीकृत हिन्दी बोली जाती है।

मेरी हिन्दी में निम्न प्रयोग देखकर मेरे कुछ साथी अक्सर हंसते है, लेकिन जब उनके अपने बच्चे वही प्रयोग करते हैं तो लाचार से हो जाते हैः

मैने बाज़ार जाना है।

मेरे को काम है।

मुझे एक कौली दे दो।

ज़रा सब्जी को छेड़ा दे देना।

जो पंजाबी कहकर मेरा मज़ाक उड़ाते हैं वे यह भूल जाते हैं कि राजनीति व सत्ता का केन्द्र अब दिल्ली है। हिन्दी भी यहीं की चलेगी। या फिर लाखों पंजाबी जो अपनी मातृभाषा हिन्दी बताते हैं या लाखों ऐसे लोग जिनकी मातृभाषा हिन्दी गिन ली जाती है– हिन्दी बोलने वालों की संख्या में से कम कर देने चाहिए।

साफ है कि लिपि, व्याकरण, साहित्य, विस्तृत क्षेत्र व व्यापक प्रयोग आदि के आधार पर भाषा व बोली में अंतर करना संभव नहीं। फिर भी यह अन्तर करना संभव नहीं। फिर भी यह अंतर क्यों किया जाता है? और इतनी गहराई से किया जाता है कि हम 'हिन्दी' को भाषा व 'ब्रज' या 'बुन्देली' को बोली कहने में कुछ भी झिझक महसूस नहीं करते। हिन्दी को एक मानकीकृत भाषा का दर्जा देने के लिए व ब्रज अवधी आदि को उसकी बोलियां बनाने के लिए आपके चारों ओर निरन्तर प्रयास हो रहे है; उन्हें ज़रा गौर से समझने का प्रयास करें।

(एकलव्य द्वारा प्रकाशित संदर्भ से साभार)

रमा कांत अग्निहोत्री, भाषा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

तो मां अपने नन्हें बच्चे को किस भाषा में डांटेगी?

अशोक बोहरा 'अनित्य'

मातृभाषा वह होती है जिसमें मां अपने शिशु को लोरी सुनाती है, जिसमें स्त्रियां मंगल गीत गाती है। इस मायने में यदि राजस्थानी की आकांक्षा हो तो क्या गलत है।

हिन्दी को राजभाषा का दर्जा देने का जिन लोगों ने संविधान सभा में आगे बढ़कर समर्थन किया उनमें राजस्थान के लोग प्रमुख थे। उन्होंने वहां हिन्दी का राजभाषा के रूप में समर्थन इसलिए नहीं किया कि उनकी अपनी कोई भाषा नहीं थी या हिन्दी उनकी मातृभाषा थी। संविधान सभा की बहस में हिन्दी का समर्थन करते हुए जयनारायण व्यास ने जो बाद में राजस्थान के मुख्यमंत्री बने कहा था ''मैं हिन्दी में बोल रहा हूं हालांकि मेरी भाषा राजस्थानी है जो हिन्दी से अलग है और उसमें कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो हिन्दी में नहीं पाई जाती।'' राजस्थान के लोग कभी हिन्दी के खिलाफ नहीं रहे। आज जब वे अपनी मातृभाषा को उसकी उचित मान्यता दिलाने की बात करते हैं तो उन पर हिन्दी विरोधी होने की तोहमत लगाना उनके साथ अन्याय है। किसी ने कभी यह नहीं कहा कि राजस्थानी को राजभाषा का दर्जा दिया जाए या राज्य में हिन्दी का स्थान उसे मिले। 2001 की जनगणना के अनुसार राजस्थानी तीन करोड़ 60 लाख लोगों की भाषा है। मगर आरोप लगाया जाता है कि राजस्थानी तो कोई भाषा ही नहीं है।

एक हजार साल से लगातार जिस भाषा का समृद्ध साहित्य मिलता हो, जिसे दुनियाभर के भाषाविदों को फोनोलाजिकल, माफोंलाजिकल, सिन्टेक्टीकल तथा लेक्सीकल लिहाज से भाषा मानने में कोई दिक्कत नहीं है, उसके अस्तित्व को लेकर उठाए गए सवालों का क्या औचित्य है। मातृभाषा वह होती है जिसमें मां अपने शिशु को लोरी सुनाती है, जिसमें स्त्रियां मंगलगीत गाती हैं, जिसमें क्रोध में मुंह से अपशब्द निकलते हैं। भाषा का सवाल कानूनी नहीं होता। वह आस्था का भी नहीं होता। वह ममता का होता है। मां अपने नन्हें बेटे को किस

भाषा में डांटेगी? यह ठीक है कि आज कई माएं अपने बच्चों को अंग्रेजी में डांटती हैं। मगर उन मांओं ने अपनी दादी–नानी की गोद में नींद लेते हुए जिस भाषा में कहानियां सुनी वह उनकी मातृभाषा होती है। भाषा के पीछे एक पृष्ठभूमि होती है। एक लम्बी सांस्कृतिक परंपरा होती है। राजस्थानी की लेखिका रानी लक्ष्मी कुमारी चुंडावत के अनुसार ''राजस्थानी भाषा जीवित संघर्षरत समाज की अनोखी और अनूठी विरासत है।'' रंग–बिरंगी और गहरी राजस्थानी संस्कृति की बातें करते हम नहीं अघाते। मगर क्या राजस्थानी भाषा को काटकर इस संस्कृति की कल्पना की जा सकती है? भाषा की समृद्धता उसके विभिन्न रूपों में देखी जा सकती है। प्राचीन गद्य साहित्यिकी रचनाएं तथा ऐतिहासिक विधाएं राजस्थानी भाषा की उपलब्धियां हैं। ख्यात (इतिहास) वात (कहानी) विगत (विवरण) टीका, अनुवाद, पीढ़ी, वंशावली, हकीकत, रूत, पट्टा, परवाना, रूक्का, लेख, याददाश्त क्या नहीं मिलता राजस्थानी साहित्य में, अपभ्रंश के बाद का जैन साहित्य भी इसी भाषा में मिलता है। कहते हैं यह तो बोली है, भाषा नहीं। इसका जवाब तो भाषाविद् कभी का दे चुके कि बोलियां तो भाषा की समृद्धता होती है। जिस भाषा की जितनी अधिक बोलियां होती हैं वह उतनी ही समृद्ध मानी जाती है। मातृभाषाएं तोड़ती नहीं जोड़ती हैं। व्यक्ति का सही विकास किसी भी मातृभाषा में ही बेहतर हो सकता है।

1975 में एनसीईआरटी ने दसवीं कक्षा तक का स्कूली पाठ्यक्रम बनाते हुए स्पष्ट कहा था कि बच्चों को शुरूआती शिक्षा सामान्य तौर पर उसकी मातृभाषा में ही देनी चाहिए। वैज्ञानिक शोधों से यह भी पता चला है कि मातृभाषा जो सदियों पुरानी होती है वह मानव के जीन्स तक में पैठी होती है। उन्होंने अपने अध्ययनों से पाया है कि एक भाषा जो हजार से भी अधिक साल पहले लुप्त हो गई उसे यदि आज की पीढ़ी को सिखाया जाए तो वे बच्चे उसे जल्दी और आसानी से सीख लेते हैं जो उस समुदाय के हैं जिसमें वह भाषा लुप्त होने से पहले प्रचलन में थी। तत्कालीन सोवियत संघ के जाने–माने साहित्यकार रसूल हमजातोव ने 'मेरा दागिस्तान' किताब में लिखा ''भाषाएं आकाश में सितारों के समान होती हैं। सूरज भी है। मगर सभी सितारे सूरज में मिल जाएं यह तो ठीक नहीं। सूरज हो। मगर सितारों को भी तो चमकते रहना चाहिए।'' लोगों की भाषाएं बेशक अलग–अलग हों, मगर दिल एक होने चाहिए। राजस्थानी भाषा का विरोध करने वाले यह मिला हुआ दिल तोड़ रहे हैं। राजस्थानी भाषा को यह साबित नहीं करना है कि वह राजस्थान के लोगों की जन–जन की भाषा है। आज आकाशवाणी और दूरदर्शन दोनों पर इस भाषा में समाचार बुलेटिन प्रसारित होते हैं। केन्द्रीय साहित्य अकादमी इसे मान्यता देती है और हर साल राजस्थानी भाषा के साहित्यकार को पुरस्कृत करती है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इसे विशिष्ट भाषा के रूप में मान्यता देता है। इस भाषा को उच्च शिक्षा के डिग्री कोर्स में स्थान मिला हुआ है। इसमें शोध प्रबन्ध हो रहा है और सबसे बड़ी बात आज राजस्थानी भाषा में भरपूर आधुनिक साहित्य भी रचा जा रहा है। ऐसे में अपनी भाषा को आठवीं अनुसूची में शामिल करवाने के लिए राजस्थानियों की प्रबल आकांक्षा है तो गलत नहीं है। अन्य कई भाषाएं इस अनुसूची में पहले से हैं। ऐसी भाषाएं भी, जिनको बोलने वाले राजस्थानियों की संख्या से कहीं कम हैं। राजस्थानी भाषा अपने लिए कोई विशिष्ट स्थान नहीं चाहती। वह अपना वाज़िब हक चाहती है।

अशोक बोहरा, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

गांधी जी और शिक्षा में भाषा-नीति

रामशकल पाण्डेय

भारतीय शिक्षा इस समय अनेकानेक रोगों से ग्रस्त है। अनुपयुक्त भाषा–नीति भी एक ऐसा भयंकर रोग है जो दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और जिसने भारतीय शिक्षा को चारों ओर से जकड़ लिया है। सबसे दुखद बात तो यह है कि इस रोग की भयंकरता का रोगी को अनुमान ही नहीं है। रोग बहुत पुराना है। इसका प्रारम्भ सन् 1933 में हुआ और 2 फरवरी 1935 में लॉर्ड मैकाले ने शिक्षा–संबंधी जो विवरण–पत्र प्रस्तुत किया था उसी से इस रोग का प्रारम्भ मानना उचित है। इस रोग का इलाज वही है जिसे महात्मा गांधी ने हमें बहुत पहले बता दिया है। गांधी जी ने शिक्षा में जिस भाषा–नीति का समर्थन किया है उस पर लेख में विचार किया जाएगा।

जिस समय गांधी जी पढ़ रहे थे उस समय शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी थी। जब उन्होंने भारतीय राजनीति में प्रवेश किया, उस समय भी अंग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम थी। अंग्रेजी शिक्षा को उस समय (और दुर्भाग्यवश आज भी) उच्च संस्कृति का प्रतीक माना जाता था। इस संबंध में गांधीजी के विचार देखिए जो उन्होंने 27 अप्रैल 1921 में 'यंग इण्डिया' में एक लेख लिखकर व्यक्त किए थे। उन्होंने लिखा है–''यह मेरा निश्चित मत है कि आज की अंग्रेजी शिक्षा से शिक्षित भारतीयों को निर्बल और शक्तिहीन बना दिया है। इसने भारतीय विद्यार्थियों की शक्ति पर भारी बोझ डाला है और हमें नकलची बना दिया है।... कोई भी देश नकलचियों की जाति पैदा करके राष्ट्र नहीं बना सकता।''

गांधी जी अंग्रेजी शिक्षा–प्राप्त तथाकथित सभ्य भारतीयों को नकलचियों की एक अलग जमात समझते थे। उनकी भाषा–नीति का यह प्रथम बिन्दु है।

रोगी अनेकानेक भ्रमों का शिकार होता है। भारत की भाषा के संबंध में एक भ्रम का शिकार है। गांधीजी भारत की नाड़ी पहचानते थे। वे सही माने में राष्ट्रपिता थे। उसी 27 अप्रैल 1921 वाले लेख में वे लिखते हैं–''भारत आज जिन वहमों का शिकार है, उनमें से सबसे बड़ा वहम यह है कि स्वातन्त्रय से संबंधित विचारों को हृदयंगम करने के लिए और तर्कयुक्त चिन्तन की क्षमता का विकास करने के लिए अंग्रेजी भाषा का अध्ययन आवश्यक है।''

गांधी जी की जन्मशताब्दी मनाने वाले हम भारतवासी अपने दिलों को टटोलें और स्वयं पूछें कि क्या इस भ्रम में हमें आज भी छुटकारा मिल सका है।

गांधी जी की भाषा–नीति की दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत को इस भ्रम से मुक्त हो जाना चाहिए कि अंग्रेजी की शिक्षा मानसिक विकास के लिए आवश्यक है।

यह बस तब हो सकता है जब हम अपने दैनिक जीवन में अंग्रेजी का प्रयोग बंद करें। यदि सामान्य जीवन में अंग्रेजी का वर्चस्व कायम रहा तो अंग्रेजी के अनावश्यक प्रयोग का विश्लेषण करते हुए गांधीजी लिखते हैं– ''मैं ऐसी कई मिसालें जानता हूं जिसमें स्त्रियां इसलिए अंग्रेजी पढ़ना चाहती हैं कि अंग्रेजों के साथ उन्हें अंग्रेजी बोलना आ जाए। मैंने ऐसे कितने ही पति देखे हैं जो इसलिए दुखी होते हैं कि उनकी पत्नियां उनके साथ उनके मित्रों के साथ अंग्रेजी में बात नहीं कर सकतीं। मैं ऐस कुटुम्बों को जानता हूं जिनमें अंग्रेजी भाषा को अपनी मातृभाषा 'बना लिया' जाता है। .... इस बुराई ने समाज में इतना घर कर लिया है कि अनेक लोगों की दृष्टि में शिक्षा का अर्थ अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के सिवाय और कुछ नहीं है ही नहीं।''

गांधी जी सामाजिक जीवन में अंग्रेजी के प्रयोग को बुराई समझते थे। इसी संदर्भ में वे अन्यत्र लिखते हैं–''हमारे बालक और बालिकाओं को यह सोचने का प्रोत्साहन देना कि अंग्रेजी के ज्ञान के बिना उत्तम समाज में प्रवेश करना असंभव है, भारत के पुरूषत्व और खासतौर पर स्त्रीत्व के प्रति हिंसा करना है। यह विचार इतना अपमानजनक है कि सहन नहीं किया जा सकता।''

उनकी भाषा–नीति का तीसरा बिंदु यह है कि सामाजिक जीवन में अंग्रेजी का प्रयोग बुराई है अतः बालक–बालिकाओं को इस बुराई से मुक्त रखना है।

सामाजिक जीवन में अंग्रेजी का अनावश्यक प्रयोग तब बन्द होगा जब शिक्षालयों में शिक्षा का माध्यम बदल दिया जाय। शिक्षा का माध्यम किसी विदेशी भाषा को रखना नितान्त अनुचित है। इससे छात्रों का अधिकांश समय अंग्रेजी का सीखने में ही व्यतीत हो जाता है और विषय का ज्ञान हो ही नहीं पाता। और यदि यह कहा जाय कि अंग्रेजी का ज्ञान हो जाता हो, सो भी बात नहीं है। 'हिन्द स्वराज' में गांधीजी लिखते हैं– ''हम एक दूसरे को अशुद्ध अंग्रेजी में लिखते हैं और इससे हमारे एम.ए. लोग भी मुक्त नहीं हैं।'' अतः अंग्रेजी सिखाने में छात्रों का समय नष्ट करना उचित नहीं कहा जा सकता। इससे वे ज्ञान–विज्ञान में पिछड़ जाएंगे और दासता में ही जकड़े रहेंगे।'' 'हिन्द स्वराज' में ही वे लिखते हैं– ''लाखों लोगों को अंग्रेजी का ज्ञान देना उन्हें गुलाम बनाना है।''

यदि विदेशी भाषा शिक्षा माध्यम होती है तो नवयुवकों में साहस, उत्साह, सजीवता, आशावादिता आदि गुण नष्ट हो जाते हैं। यह गांधीजी की भाषा–नीति का चौथा सूत्र है।

शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए। गांधी जी लिखते है– ''मातृभाषा मनुष्य के मानसिक विकास के लिए उतनी ही आवश्यक है जितना बालक के शारीरिक विकास के लिए माँ का दूध।'' वे मातृभाषा को शिक्षा का एवं परीक्षा का माध्यम बनाने के पक्ष में थे। उनके द्वारा प्रवर्तित बुनियादी तालीम का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से दी जायेगी। भारत में कई सम्पन्न भाषाएं है। जिस क्षेत्र में मातृभाषा हो, वहाँ के विद्यालयों में वही भाषा का माध्यम हो। शिक्षा के माध्यम के रूप में सम्पूर्ण भारत में किसी एक भाषा की आवश्यकता नहीं है।

गांधी जी की भाषा–नीति का पांचवां सूत्र हैः शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

जब शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगी तो अंग्रेजी का स्थान माध्यम के रूप में समाप्त हो जाएगा।

किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि भारत में अंग्रेजी बिल्कुल ही समाप्त हो जाएगी। 'यंग इंडिया' में 1 सितम्बर 1921 में वे लिखते हैं– ''मैं अंग्रेजी को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और कूटनीति की भाषा समझता हूं .... मैं निश्चय ही इसके अध्ययन को उन लोगों के मध्यम प्रोत्साहित करूंगा जिनमें भाषा संबंधी प्रतिभा है और उनसे मैं यह आशा करूंगा कि वे भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी–निधि को अनूदित करें।'' इस प्रकार गांधी जी अंग्रेजी को अध्ययन केवल उन लोगों के लिए आवश्यक समझते थे जिनमें भाषायी प्रतिभा हो।

अंग्रेजी का अध्ययन अनिवार्य न होकर वैकल्पिक हो और उसे कुछ ही छात्र पढ़े। यह गांधी जी की भाषा–नीति का छठा बिन्दु है।

गांधीजी हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा मानते थे। वे चाहते थे कि कांग्रेस पार्टी का सारा केन्द्रीय काम–काज हिन्दी में हो। केन्द्र की राजभाषा के रूप में भी वे हिन्दी के समर्थक थे। वे स्वयं भी अवसर मिलने पर हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग करते थे। वे हिन्दी और उर्दू में कोई अंतर नहीं देखते थे। 'हरिजन बंधु' में 8 मार्च, 1942 में उन्होंने लिखा है–''हिन्दी और उर्दू में कोई संघर्ष नहीं है, किन्तु एक ओर इन दोनों तथा दूसरी और अंग्रेजी में अवश्य संघर्ष है। गांधी जी हिन्दू–मुस्लिम एकता के समर्थक थे अतः उन्होंने हिन्दी की अपेक्ष्ज्ञा राष्ट्रभाषा का नाम हिन्दुस्तानी ज्यादा अच्छा समझा। हिन्दुस्तानी साधारण जनता की भाषा है और सरल हिन्दी में तथा हिन्दुस्तानी में कोई अंतर नहीं है। बहुभाषा–भाषी देश भारत में एक सम्पर्क भाषा का होना आवश्यक है। हिन्दी इस आवश्यकता की पूर्ति करती है। अतः सम्पूर्ण देश में हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए।

सम्पूर्ण देश के पाठ्यक्रम में राष्ट्रभाषा हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य हो। यह गांधी जी की भाषा–नीति का सातवां सूत्र है।

गांधी जी हिन्दी और उर्दू को मूलतः एक ही भाषा मानते थे। अरबी लिपि में लिखी हुई हिन्दुस्तानी उर्दू है और देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दुस्तानी हिन्दी है। कुछ लोग इस विवाद को समाप्त करने के लिए रोमन लिपि को अपनाने का सुझाव देते हैं। इस सम्बन्ध में 'हरिजन बन्धु' में 12 फरवरी 1939 में व्यक्त किए गए गांधी जी के विचार देखिए। वे लिखते हैं–''भावना और विज्ञान दोनों ही समान रूप से रोमन लिपि के विरूद्ध हैं। इसका एकमात्र गुण मुद्रण एवं टंकण के लिए सुविधा है। किन्तु लाखों के ऊपर इसका जो बोझ पड़ेगा उसकी तुलना में यह कुछ नहीं है। उन लाखों लोगों के लिए इससे कोई मदद नहीं मिलेगी जिन्हें अपना साहित्य या तो प्रान्तीय लिपियों में या देवनागरी लिपि में पढ़ना पड़ेगा।''

गांधी जी की भाषा–नीति का आठवां बिन्दु यह है कि हिन्दुस्तानी भाषा देवनागरी या अरबी लिपि को छोड़कर रोमन लिपि में नहीं लिखी जा सकती।

गांधी जी हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने हिन्दी–प्रचार को राष्ट्र–सेवा का अंग माना। दक्षिण भारत में उन्हीं ही प्रेरणा से हिन्दी का इतना प्रचार हो सका था। इससे कुछ लोग यह कहने लगे कि हिन्दी प्रचार का उद्देश्य प्रान्तीय भाषाओं का दमन करना है और गांधी जी प्रान्तीय भाषाओं का दमन कर रहे हैं। इस पर गांधीजी ने स्पष्ट किया–''हिन्दी या हिन्दुस्तानी का उद्देश्य यह नहीं कि वह प्रान्तीय भाषाओं की जगह ले ले। यह अतिरिक्त भाषा होगी और अन्तःप्रान्तीय सम्पर्क के काम आएगी।'' (देखिए 'थॉट्स ऑन नेशनल लैंग्वेज', पृष्ठ 26) उन्होंने बाद में भी स्पष्ट किया–''मेरा कहना बराबर यही रहा है कि प्रांतीय भाषाओं को

ज़रा भी अहित हम नहीं करना चाहते, उनका दमन या नाश करना तो दूर की बात है।'' (वही, पृ. 38) गांधी जी नहीं चाहते थे कि अहिन्दी–भाषी प्रदेशों में हिन्दी शिक्षा का माध्यम हो। वे यह स्थान प्रान्तीय भाषाओं को ही देते थे।

गांधी जी की भाषा–नीति का नवां सूत्र यह है कि प्रांतीय भाषाओं की शिक्षा का प्रसार हो, इन भाषाओं की उन्नति हो और इनका दमन न हो।

अपने विद्यार्थी जीवन में गांधी जी संस्कृत से बहुत डरते थे। फिर भी जो कुछ संस्कृत वह सीख सके थे उस पर उन्हें गर्व था। वे अपनी आत्मकथा में इस बात का पश्चाताप भी करते हैं कि उन्हें संस्कृत का अधिक ज्ञान नहीं हो सका। वे संस्कृत के पठन–पाठन को सदा प्रोत्साहित करते थे। 'हरिजन' में 23 मार्च 1940 में वे लिखते हैं–''मैं इस बात से सहमत हूं कि संस्कृत का अध्ययन बहुत उपेक्षित है। मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता कि इस प्रकार का अध्ययन समय में प्रयत्न कर दुरूपयोग है। मेरा विश्वास है कि इससे आधुनिक भाषाओं के अध्ययन में सहायता मिलेगी। जहां तक भारत का संबंध है, वहां पर किसी अन्य प्राचीन भाषा की अपेक्षा संस्कृत के विषय में यह बात अधिक सत्य है और प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी को इसका अध्ययन करना चाहिए क्योंकि इससे प्रान्तीय भाषाओं का अध्ययन अधिक सुगम हो जाता है।'' गांधी जी स्वयं संस्कृत का और अध्ययन ज्ञान प्राप्त करने के लिए लालायित रहते थे। उन्हें संस्कृत का जो कुछ ज्ञान था उसी के आधार पर आगे चलकर धार्मिक ग्रन्थों में उनकी रूचि बनी रही। वे चाहते थे कि प्रत्येक भारतीय और विशेषकर प्रत्येक हिन्दू बालक एवं बालिका को संस्कृत का अच्छा ज्ञान हो।

गांधी जी की भाषा–नीति का दसवां सूत्र यह था कि प्रत्येक देशभक्त को संस्कृत का अध्ययन करना चाहिए। वे पाठ्यक्रम में संस्कृत को महत्वपूर्ण स्थान देने के पक्ष में थे।

गांधी जी के अनुसार शिक्षा में भाषा–नीति के उपर्युक्त दस महत्वपूर्ण सूत्र हैं। शिक्षा के आज जिस प्रकार की भाषा–नीति अपनाई जा रही है, वह गांधी जी की भाषा–नीति के अनुकूल नहीं है। आज की परिस्थितियों में भी महात्मा गांधी द्वारा व्यक्त भाषा–नीति को हम लागू कर सकते है। काश, उपर्युक्त दस बातों में से कुछ पर ही हम सच्चे दिल से चल सकते।

(यह लेख विद्या भवन गोविन्द राम सेक्सरिया टीचर्स कॉलेज, उदयपुर द्वारा 1970 में प्रकाशित 'शिक्षा मर्मज्ञ गांधी' से साभार।)

मातृभाषा में शिक्षण

महेश कुमार पी. रावल

बुनियादी शिक्षा के पथदर्शक गांधी जी ने प्रारंभिक शिक्षा के लिए मातृभाषा का माध्यम ही उचित माना है। उनके शब्दों में– ''मानव के मानसिक विकास के लिए मातृभाषा उतनी ही आवश्यक है जितना बच्चे के लिए माता का दूध। बालक पहला पाठ अपनी माता से ही पढ़ता है, इसलिए उसके मानसिक विकास के लिए, उसके ऊपर मातृभाषा के अतिरिक्त कोई दूसरी भाषा लादना मैं मातृभाषा के विरूद्ध समझता हूं।''

बुनियादी शिक्षा के पथदर्शक गांधी जी ने प्रारंभिक शिक्षा के लिए मातृभाषा का माध्यम ही उचित माना है। उनके शब्दों में– *''मानव के मानसिक विकास के लिए मातृभाषा उतनी ही आवश्यक है जितना बच्चे के लिए माता का दूध। बालक पहला पाठ अपनी माता से ही पढ़ता है, इसलिए उसके मानसिक विकास के लिए, उसके ऊपर मातृभाषा के अतिरिक्त कोई दूसरी भाषा लादना मैं मातृभाषा के विरूद्ध समझता हूं।''*

बुनियादी शिक्षा के महत्वपूर्ण सिद्धांतों में मातृभाषा के जरिए शिक्षा पर ज्यादा जोर दिया गया है। इसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण है। जब एक बालक माता की गोद में जन्म लेकर पलता है, अनुकरण करके बोलना सीखता है, यहां सीखी जाने वाली भाषा मातृभाषा कहलाती है। मातृभाषा में ही व्यक्ति हर्ष, आनंद, भावों एवं रूचियों को तत्काल पेश करता है। मातृभाषा ही व्यक्ति के सरलतापूर्वक विचारों का आदान–प्रदान करने का साधन है। अतः मातृभाषा वही है जो क्षेत्र विशेष में समाज स्वीकृत परिनिष्ठ भाषा जिसके माध्यम से सामाजिक कार्य सम्पन्न होने है।

मातृभाषा द्वारा शिक्षा क्यों ?

आज अभिभावकों की एक मनोदशा बनी हुई है कि अपने बच्चों को किस माध्यम से शिक्षा दी जाए। जब घर में मातृभाषा बोली जाती हो और विद्यालय में कोई अलग भाषा में शिक्षा दी जा रही हो तो उससे छात्रों की उलझन बढ़ती है। उनकी प्रारंभिक शिक्षा कच्ची रह जाती है। छात्र विद्यालय एवं घर की भाषा में समायोजन नहीं कर पाते। रवीन्द्रनाथ टैगोर भी मातृभाषा के माध्यम द्वारा शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में थे। वे लिखते हैं कि– "अंग्रेजी भाषा के घूंघट में छिपी हुई विद्या स्वभाव से हमारे मन की होकर नहीं चल सकती। यही वजह है कि इसमें से अधिकांश लोगों को जितनी शिक्षा मिलती है, उतनी विद्या नहीं मिलती।''

अभिव्यक्ति का सरलतम साधन

मातृभाषा अभिव्यक्ति का सरलतम साधन है। बालक मातृभाषा की शिक्षा अपने परिवार में सहज रूप से अनुकरण के द्वारा पाता है। उसमें कोई विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं रहती। मातृभाषा से उनका संबंध इतना गहरा हो जाता है कि वह जो कुछ सोचता है, मातृभाषा में ही सोचता है। जितनी सरलता से मातृभाषा में अभिव्यक्ति कर सकता है, उतनी किसी अन्य भाषा में नहीं कर पाता।

यहां मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो मातृभाषा का प्रभाव मस्तिष्क में अमिट रहता है। मातृभाषा

की पहुंच हमारे अचेतन मन की गहराइयों तक रहती है।

सांस्कृतिक विरासत की पहचान

हमारी संस्कृति की महानता का परिचय बालक मातृभाषा के द्वारा ही प्राप्त कर सकता है। अपने पूर्वजों के विचार, धार्मिक परंपराएं, रहन–सहन आदि का ज्ञान मातृभाषा के द्वारा ही सही ढंग से प्राप्त किया जाता है। आजकल लोग अंग्रेजों से इतना प्यार करते हैं और जीवन का अधिकांश हिस्सा अंग्रेजी सीखने में ही व्यय करते है। वे अंग्रेजी संस्कृति से परिचित हो जाते हैं लेकिन भारतीय संस्कृति का पूर्ण परिचय नहीं कर पाते।

अपनी संस्कृति, अपनी परंपराएं, मूल्यों, आदर्शों आदि की सही पहचान के लिए अपनी भाषा का अध्ययन आवश्यक है।

मानसिक शक्तियों के विकास के लिए

जब छात्र मातृभाषा के अलावा अन्य भाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करता है तब उनका अधिकांश समय अन्य भाषा सीखने में ही व्यतीत होता है। वह विषयों की गहराई तक नहीं पहुंच सकता। जबकि मातृभाषा के द्वारा शिक्षा सरल एवं सहज बनती है। उनका चिंतन–मनन मातृभाषा में होने से सृजनात्मक विकास भी ज्यादा होता है। विश्व के अधिकांश देशों में प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में ही दी जाती है।

अतः विषयों की गहराई तक पहुंचने के लिए तथा ज्ञानात्मक एवं बौद्धिक विकास के लिए प्रारंभिक शिक्षा का इंतजाम मातृभाषा में ही करना चाहिए।

व्यक्तित्व का विकास के लिए

छात्र मातृभाषा पर ज्यादा अधिकार पाता है। उनका चिंतन–मनन सब मातृभाषा में ही होता है। अब उन्हें अन्य प्रकाशन में कोई बाधा नहीं पहुंचती। वह अपने विचारों को स्पष्ट रूप से देश कर सकता है। अपने भावों को, कमियों को सही ढंग से व्यक्त कर सकता हैं जो अपने व्यक्तित्व को नया मोड़ देते है। आत्मभिव्यक्ति जितनी अच्छी मातृभाषा में हो सकती है उतनी अच्छी अन्य किसी विदेशी भाषा में नहीं हो पाती।

छात्रों में आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए तथा उनकी जन्मजात शक्तियों के विकास के लिए मातृभाषा के द्वारा शिक्षा आवश्यक है।

नागरिकत्व के गुणों के विकास के लिए

मातृभाषा मातृभूमि से जुड़ी है। मातृभाषा के प्रति जो प्रेम है उसको बढ़ाने का कार्य मातृभाषा करती है। मातृभाषा के द्वारा व्यक्ति का भावात्मक विकास होता है और देशप्रेम की भावना दृढ़ होती है। मातृभाषा ह्रदय की भाषा बनती है जो अपने विचारों को समझाने में तथा दूसरों के विचारों को समझने में सहायता करती है। वह भावनात्मकता के साथ नैतिकता का विकास भी करती है। नैतिकता ही सभी गुणों की खान है जो क्रमशः उत्तम नागरिक के लिए आवश्यक सभी गुणों का विकास करती है।

उपर्युक्त बातों को आधार बनाकर संक्षेप में कह सकते है कि, केवल एक ही भाषा हमारे भावों को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकती है, जिसे हम अपनी माता के दूध के साथ सीखते है, वह है मातृभाषा। किसी दूसरी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना सचमुच छात्रों के श्रम को अनावश्यक बढ़ाकर उसके मस्तिष्क को पंगु बनाना ही है।

महेश कुमार पी. रावल, हिंदी शिक्षक महाविद्यालय, गूजरात विद्यापीठ अहमदाबाद, गुजरात

स्पट

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र द्वारा गठित

रिसर्च फोरम

अपने काम को खुद जांचने का जरिया

भाग चन्द्र कुमावत

शिक्षण की प्रक्रिया में बच्चों के सीखने–सिखाने की परिस्थितियों को समझने व सीखने के अवसर बढ़ाने के लिए और शिक्षकों में शोधवृत्ति विकसित करने, उनकी शैक्षिक क्षमता संवर्द्धन करने के उद्देश्य से विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर के द्वारा एक शोध समूह (रिसर्च फोरम) का गठन किया गया। इस शोध समूह में विद्या भवन सोसायटी की शिक्षण संस्थाओं के शिक्षक व शोध कार्यकर्ताओं को शामिल किया गया है। शोध समूह के द्वारा अनुभवजनित शिक्षण मुद्दों के संदर्भ में किए जाने वाले अध्ययनों और उनके परिणामों को आपस में बांटा जाता है। कक्षा–कक्ष के कठिन मसलों को समझने का प्रयास किया जाता है।

इस शोध समूह में बच्चे कैसे सीखते हैं जैसे मसलों को समझने का प्रयास किया जाता है। क्रियात्मक अनुसंधान क्या और क्यों, अनुसंधान की योजना बनाना, अनुसंधान उपकरण की रचना करना और उसका परीक्षण करना शोध समूह के प्रमुख काम हैं। क्रियात्मक अनुसंधान के अंतर्गत किए गए अध्ययनों की रिपोर्ट तैयार करना और उन पर चर्चा करना व अध्ययनों के दस्तावेजीकरण करना, आदि काम किया जाते हैं। साथ ही शिक्षण में आने वाली समस्याओं और उनके हल को लेकर विमर्श किया जाता है। इससे शिक्षकों और शैक्षिक कार्यकर्ताओं को शिक्षा से जुड़े मुद्दों की बारीकियों को समझने का अवसर मिलता है, अवधारणाओं में स्पष्टता आती है। उन्हें शोध और क्रियात्मक अनुसंधान की तरफ आगे बढ़ने में काफी मदद मिलती है। कक्षा–कक्ष के शैक्षिक वातावरण में सकारात्मक बदलाव आता है।

शोध कार्य से गणित, विज्ञान व सामाजिक विज्ञान आदि की अवधारणाओं और विषय–वस्तु को समझने–समझाने में शिक्षकों व बच्चों को मदद मिलती है तो दूसरी ओर पाठ्य सामग्री के चयन में शिक्षकों को एक दिशा मिलती है। पढ़ने–पढ़ाने की प्रविधियों और तरीकों में परिवर्तन लाने के साथ यह प्रयोग करने का रास्ता खोलता है।

किए जाने वाले अध्ययनों की मदद से शिक्षक–छात्र के आपसी रिश्तों को समझनें में मदद मिलती है साथ ही बच्चे और उसके सामाजिक पर्यावरण को समझने का अवसर मिलता है। इसके अलावा किए गए या किए जाने वाले शोध व अध्ययन कार्य के निष्कर्षों को आपस में बांटे जाने से शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले लोगों को फीडबैक मिलती है।

वर्ष 2006–07 में शोध समूह की कुल 10 चर्चा बैठकें आयोजित की गई। रिसर्च फोरम की शुरूआती बैठकों में भाषा, गणित, विज्ञान व सामाजिक विज्ञान की किन–किन बातों पर क्रियात्मक अनुसंधान कार्य किया जा सकता है, पर चर्चा की गई।

उल्लेखनीय है कि रिसर्च फोरम की बैठक माह में कम से कम एक बार जरूर होती है। इन बैठकों में

कार्य की योजनाएं बनाई गई। किए गए अध्ययन कार्य का शिक्षकों और शोध कार्यकर्ताओं के द्वारा प्रस्तुतीकरण किया गया। अध्ययनों पर चर्चा की गई। अध्ययनों की रिपोर्ट के दस्तावेजीकरण करने पर बातचीत की गई। तथ्यों के विश्लेषण करने के संदर्भ में चर्चा की गई। सीखने–सिखाने के मुद्दों को समझा गया।

वर्ष 2006–07 में किए गए प्रमुख अध्ययनों का विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है–

(i) विज्ञान में बच्चों की प्रयोग द्वारा सिद्धान्त को सिद्ध करने की समझ का अध्ययन करना

उच्च प्राथमिक व माध्यमिक स्तर की शालाओं में बच्चों की विज्ञान की पाठ्य पुस्तक में विज्ञान की अवधारणाओं व सिद्धान्तों को प्रयोग द्वारा सिद्ध कर समझने के लिए कई प्रकार के प्रयोग दिए गए होते हैं। प्रयोगों के निष्कर्षों का भी उनमें उल्लेख होता है। अध्ययन करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है कि क्या बच्चे इन पाठ्यपुस्तकों में दिए गए प्रयोगों और उनके निष्कर्षों तक स्वयं प्रयोग करके देख कर पहुंच पाते है या विश्लेषण कर समझ पाते हैं? प्रयोग के अवसर देने पर बच्चे क्या कर पाते हैं? क्या किताब में दिए गए प्रयोग और बच्चों द्वारा वास्तविक रूप से किए जाने वाले प्रयोग की स्थितियों में कोई फर्क आता है।

इस अध्ययन के तहत कक्षा आठवीं और कक्षा नवीं के बच्चों पर विज्ञान विषय में बच्चों के द्वारा प्रयोग द्वारा सिद्वान्त को सिद्व करने की समझ पर अध्ययन शुरू किया।

अध्ययनों के निष्कर्षों का प्रस्तुतीकरण किया गया है। अब इनकी रिपोर्ट तैयार करने का काम चल रहा है।

(ii) माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी भाषा में बच्चों की passage की समझ का अध्ययन करना

उच्च प्राथमिक व माध्यमिक स्तर की शिक्षा में अंग्रेजी की परीक्षा में passage के प्रश्न दिए जाते हैं। Passage के माध्यम से बच्चों की अंग्रेजी भाषा की समझ का मूल्यांकन किया जाता है।

कक्षा आठवीं और कक्षा दसवीं के बच्चों पर यह अध्ययन शुरू किया गया। बच्चों को अपठित गद्यांश (Unseen Passage)पढ़ने और Passage से संबंधित प्रश्नों के उत्तर लिखने को दिए। इस अध्ययन में अंग्रेजी व्याकरण और वर्तनी यानेकि Spellings की अलग–अलग तालिका बनाकर प्रस्तुत किया गया। अध्ययन पूर्ण होने पर रिपोर्ट तैयार की जाएगी और इस शोध कार्य द्वारा अंग्रेजी विषय के अध्यापकों को फीडबैक दिया जाएगा।

(iii) गृह कार्य (home work) के औचित्य के संदर्भ में शिक्षकों और बच्चों के दृष्टिकोण का अध्ययन करना

शालाओं में अकादमिक विषय के किसी पाठ या उसकी विषय–वस्तु को पढ़ाने के बाद उसके संदर्भ में शिक्षकों के द्वारा बच्चों को घर पर करने के लिए गृह कार्य दिया जाता है। गृह कार्य के संदर्भ में बच्चों और शिक्षकों का क्या दृष्टिकोण है, क्या अवधारणा है? क्या गृह कार्य करने और बच्चों की अकादमिक उपलब्धि में कोई सहसंबंध हैं? गृह कार्य की मात्रा के बारे में शिक्षकों और बच्चों की क्या सोच हैं? इन मसलों का ज्ञान करना, जानना और समझना इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है।

इस अध्ययन के अन्तर्गत कक्षा छठी व सातवीं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा रहा है। बच्चों और शिक्षकों के लिए अलग–अलग प्रश्नावली तैयार की गई है। प्रश्नावली भरवाने का कार्य लगभग पूरा हो गया है। तथ्यों का वर्गीकरण और सारणीकरण कर

जल्द ही रिपोर्ट प्रस्तुत की जाएगी।

(iv) नक्शा संबंधित जानकारी का अध्ययन

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य बच्चों का भौगोलिक ज्ञान बढ़ाना है। बच्चों को विभिन्न स्थानों के भौगोलिक स्थिति से अवगत कराना है। इस अध्ययन के अन्तर्गत कक्षा छठी से कक्षा नवीं तक के बच्चों से नक्शा भरवाने का काम पूरा हो चुका है।

(v) प्राथमिक स्तर पर बच्चों की गणित विषय में इबारती सवालों में जोड़, बाकी, भाग व गुणा की संक्रियता की समझ का पता लगाना

प्राथमिक स्तर की कक्षाओं में अक्सर यह देखने में आता है कि बच्चे इबारती सवालों में जोड़, बाकी, भाग व गुणा करने की संक्रिया में भ्रमवश या अन्य कारणों से भूल करते हैं या गलती कर देते हैं। इन कारणों को जानने और समझने के लिए कक्षा तीसरी से कक्षा पांचवी के बच्चों का अध्ययन किया गया है। बच्चों की गणित परीक्षा ली गई। Tabulation का कार्य चल रहा है।

(vi) गणित की संक्रियाओं को करते समय की जाने वाली गलतियों का अध्ययन करना

गणित के शिक्षकों का यह मानना है कि माध्यमिक स्तर पर कक्षा नवीं व दसवीं में गणित विषय में बच्चे अमूमन गणित के सवालों को हल करने में कुछ गलतियां या चूक कर देते हैं। इन गलतियों को जानने व समझने के लिए, इनके प्रकार और आवृत्तियों पर अध्ययन किया जा रहा है।

(vii) अंग्रेजी भाषा में articles के उपयोग का अध्ययन करना

राजस्थान के विद्यालयों में बच्चों को द्वितीय भाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाता है। द्वितीय भाषा होने से बच्चों को लिखने और पढ़ने में काफी कठिनाई होती है। शाला के शिक्षकों के द्वारा बहुधा यह अनुभव किया जाता है कि बच्चे अंग्रेजी भाषा में articles के नाम में a, an और the लिखने में चूक कर जाते है या गलती कर देते हैं।

इन सब सवालों के जवाबों के लिए कक्षा छठी से कक्षा नवीं के बच्चों का Articles की जांच की गई। प्राप्त तथ्यों का सारणीकरण का काम चल रहा है और रिपोर्ट बनाने की प्रक्रिया भी शुरू कर दी गई है।

(viii) हिन्दी भाषा में छोटी 'इ' (ि) व बड़ी 'ई' (ी) मात्रा का अध्ययन

हिन्दी भाषा में बच्चे अक्सर किसी पाठ्य विषय वस्तु को पढ़कर या सुनकर लिखने में छोटी 'इ' (ि) की जगह बड़ी 'ई' (ी) की मात्रा तथा बड़ी 'ई' के स्थान पर छोटी 'इ' की मात्रा लगा देते हैं। बच्चे मात्रा लगाने में ऐसा क्यों करते हैं? इस प्रकार की गलती करने के पीछे क्या कारण है? मात्रा लगाने की ऐसी गलती बच्चों में कक्षा के कौन से स्तर से किस स्तर तक चलती है अथवा गलती सुधार की प्रक्रिया क्या हैं?

इन तथ्यों का पता करने व समझने के उद्देश्य से क्रियात्मक अनसंधान के अंतर्गत कक्षा पांचवी, सातवीं और नवीं तक के बच्चों का अध्ययन किया गया। अध्ययन की रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी है।

(ix) बच्चों द्वारा पुस्तकालय के उपयोग का अध्ययन करना

क्रियात्मक अनुसंधान के अंतर्गत प्राथमिक स्तर की शालाओं में कक्षागत पुस्तकालय का बच्चों के द्वारा उपयोग करने की स्थिति का पता लगाना इस

अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है। इस अध्ययन के अंतर्गत यह भी जानना और समझना कि पुस्तकालय से पुस्तकें पढ़ने और कक्षागत टेस्ट व बच्चों के अकादमिक मूल्यांकन सहसंबंध को देखना है। इसके अतिरिक्त बच्चे किस प्रकार की पुस्तकें ज्यादा पढ़ते हैं और कौनसी कम और क्यों?

अध्ययन के अन्तर्गत कक्षा छठी और आठवीं के बच्चों का अध्ययन किया गया है। अध्ययन का दस्तावेज तैयार कर लिया गया है और रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी गई है।

(x) हिन्दी व्याकरण में बच्चों की समझ का अध्ययन

हिन्दी व्याकरण में बच्चों की समझ को जानने के लिए एक अध्ययन शुरू किया गया है। कक्षा पांचवी से कक्षा दसवीं के बच्चों को एक गद्यांश चुनकर उनमें से संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण छांटने का अभ्यास दिया गया है।

(xi) दैनिक जीवन में काम में आने वाली वस्तुओं के नाम अंग्रेजी भाषा में लिखने का अध्ययन

आस–पास के वातावरण में अमूमन बड़े व्यक्तियों के द्वारा दैनिक जीवन में काम में आने वाली कई वस्तुओं और चीजों के नाम अंग्रेजी में बोले और सुने जाते है। बच्चों के सामने इन नामों की पुनरावृति होती रहती है। बच्चे सुनते रहते है और धीरे–धीरे इन नामों से परिचित होकर इनके नाम स्वयं उपयोग करने लग जाते हैं, बोलते हैं। तो क्या बच्चे विद्यालय शिक्षा में इन नामों का अंग्रेजी में लिख सकते है? इसको जानने के लिए हज़ीरा और उदयपुर की कक्षा चौथी और पांचवी के बच्चों से वर्कशीट भरवाने का कार्य शुरू कर दिया गया है। अंग्रेजी भाषा में सही उच्चारण पर भी एक अध्ययन शुरू किया गया है। इसी प्रकार अंग्रेजी भाषा के गद्यांश में शब्दों का अर्थ समझने का एक अध्ययन भी अभी शुरू किया गया है।

(xiii) बच्चों का उद्योगों के सीखे गए काम का स्वयं के जीवन में उपयोग का अध्ययन

बुनियादी शिक्षा पद्धति के तहत विद्या भवन बेसिक स्कूल रामगिरि में अकादमिक विषय के अध्ययन के साथ–साथ हाथ के काम भी सीखाये जाते हैं। जैसे– सुथारी, सिलाई आदि। इन उद्योगों को सीखाने का मुख्य उद्देश्य बच्चों में श्रम के प्रति आदर व स्वावलंबन की भावना का विकास करना है।

इस शोध अध्ययन में संदर्भित ऐसे विद्यार्थी जो तीन वर्ष या इससे अधिक वर्ष तक इस विद्यालय में पढ़े व उद्योग के अन्तर्गत हाथ का काम सीखा और बाद में दसवीं कक्षा पास के बाद अथवा अन्य कारण से विद्यालय छोड़ दिया, उनका अध्ययन कर पता लगाना कि सीखे गये उद्यमों का उनके जीवन में क्या उपयोग है? क्या ये बच्चे मुख्य धारा की शिक्षा से निकले बच्चों से फर्क तरह के हैं।

भाग चन्द्र कुमावत, विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, फतेहपुरा, मोहनसिंह मेहता मार्ग, उदयपुर राज.

करके सीखना

आयोजन एक मेले का

वि.वि. सिंह

हाथ से काम करने व श्रम को विद्या भवन में आरम्भ से ही महत्व दिया जाता रहा है। 1941 में रामगिरि में बुनियादी शिक्षा के केन्द्रीय सिद्धान्तों पर आधारित स्कूल प्रारम्भ किया गया। विद्या भवन की अन्य शैक्षणिक संस्थाओं में भी इन विचारों को स्थापित किया गया। यहां प्रस्तुत है विद्या भवन जूनियर स्कूल में किया गया एक प्रयोग।

स्कूल में बच्चों को यदि चुनौतीपूर्ण काम करने का मौका दिया जाए तो वे उनको करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। स्कूल में मेलों का आयोजन बच्चे अपने शिक्षक की मदद से कर सकते हैं। खाने–पीने व क्राफ्ट सामग्री का निर्माण, मेले के आयोजन संबंधी व्यवस्थाएं बच्चे अपने शिक्षकों की मदद से कैसे करते हैं, इसकी झलक आपको इस लेख में मिलेगी।

शिक्षकों के स्तर पर यह चर्चा हुई कि हम लोग एक मेले का आयोजन करें, जिसमें बच्चों द्वारा निर्मित खाने–पीने की सामग्री व क्राफ्ट की चीज़ें विक्रय हेतु तथा कोई गेम या माथापच्ची बौद्धिक खेल रखे जाएं। जब पंचायत के लीडर्स से बात की गई तो बच्चे खुशी से उछल पड़े। यह तय हुआ कि मेले में सारा काम पांच समूहों में होगा और चूंकि स्कूल में पांच हाउसेज़– नालन्दा, तक्षशिक्षा, विक्रमशिला, वल्लभी और सारनाथ हैं, जिनमें कक्षा 3, 4 व 5 के मिले–जुले बच्चे हैं और प्रत्येक हाउस के साथ दो शिक्षक हैं, अतः उनकी भूमिका परामर्शक की रहे।

मेले की बात तय होने पर हाउस प्रभारियों ने अपने हाउस में बच्चों से चर्चा की। सभी को विचार पसन्द आया और अपने–अपने स्तर पर विचार–विमर्श शुरू हो गया कि कौनसा हाउस किस चीज की स्टॉल लगाएगा और क्राफ्ट की क्या चीज़ें विक्रय हेतु तैयार की जा सकती हैं? इस गतिविधि के लिए शनिवार का दिन तय हुआ।

खाने की चीजों में विविधता को ध्यान में रखते हुए हाउसेज में ये चीज़े तय हुई– फ्रूट चाट, ब्रेड सैण्डविच, पैटीज़, चना मसाला, चाट पपड़ी, मक्की की राब, पापड़, पॉपकॉर्न व पेय आदि। क्राफ्ट के लिए शुभ अवसरों पर देने के लिए लिफाफों को सजा कर, पेन व पैन्सिल स्टैण्ड, वॉल हैगिंग्स, कैरी बैग्स, पेपर कटिंग व फोल्डिंग करके कुछ अन्य सुन्दर चीजें बनाई गई। गेम में कुछ कौशल आधारित या बौद्धिक खेल रखने का निर्णय हुआ।

स्कूल परिसर में एक खुला स्थान, जहां मेले का आयोजन होना था, वहां प्रत्येक हाउस के लिए जगह निर्धारित की गई। मेले के दिन, बच्चे उत्साहवश सुबह जल्दी आ गए और कुछ बच्चे सफाई में जुट गए। कुछ बच्चे मिल–जुलकर मेज, कुर्सियां, रैक्स आदि लाने लगे। स्कूल की घंटी लगने तक वे काफी सामान पहुंचा चुके थे। मुझे हर्ष मिश्रित आश्चर्य हुआ, जब मैंने दूर से देखा कि बच्चे साइंस लैब की बड़ी–सी टेबल जो निश्चित रूप से भारी थी, आठ बच्चे मिलकर उठाए जा रहे थे। उनका जोश देखते ही बनता था।

अर्थ की व्यवस्था इस प्रकार की गई– स्कूल फंड से कुछ अग्रिम राशि निकलवा कर पांचों हाउसेज में बांट दी गई। यह राशि सबको वापस जमा करानी है, यह तय था। इसके बाद जो राशि बचेगी वह मुनाफा होगा। हर हाउस में खरीदी गई सामग्री का पूरा हिसाब रखना था। विक्रय से प्राप्त राशि का हिसाब

भी बच्चों को रखना था, जिसके लिए उन्होंने डिब्बों आदि का उपयोग किया।

जिस हाउस को फ्रूट चाट बनानी थी, देखा 5–6 बच्चे मिलकर केला, अमरूद, पपीता, सेब, अनार, सब छीलने–काटने में लगे हुए हैं। उसी हाउस के कुछ बच्चे दोने बनाने के लिए स्कूल परिसर में ही लगे पेड़ों से पत्ते तोड़ लाए। उन्हें धोकर बारीक लकड़ी की मदद से पत्तों को जोड़कर व मोड़कर दोने बनाए गए। खाने के लिए कड़े पत्तों को धोकर काटकर चम्मच के रूप में इस्तेमाल के लिए तैयार किया गया। बच्चे मसाला मिलाने, नींबू निचोड़ने का काम सब मिलकर शिक्षिका की देख–रेख में कर रहे थे।

दूसरे हाउस में ब्रेड सैण्डविच के लिए टमाटर, खीरा आदि काटे जा रहे थे। पैटीज़ बनाने के लिए उबले आलू छीलकर मसाला मिलाया जा रहा था। पता लगा छात्रावासी बच्चे स्कूल मेस से आलू उबलवा लाए थे।

जिस हाउस को मसाले वाले चने बनाने थे, उन्होंने भी स्कूल मेस से बड़े प्रेशर कूकर में चने उबलवा लिए थे। मसाला मिलाकर अलग से कटा हुआ प्याज, हरी मिर्च, टमाटर आदि रखे थे, जो ऊपर से डालने थे।

चाट पपड़ी की स्टॉल वालों ने रेडीमेड पपड़िया, दही आदि बाजार से खरीद लिया, उसी में ऊपर से कुछ उबले आलू के टुकड़े, कटे प्याज व मसाला डालकर चाट बनाने की तैयारी कर ली। जो ग्राहक आता तुरन्त सब कुछ डालकर, दोना तैयार! मक्की की राब, पापड़, पॉपकॉर्न स्टाल पर सबसे बड़ा आकर्षण था, ईंटें लगाकर लकड़ी जलाकर मिट्टी की काली हांडी में गरम–गरम राब! कुल्हड़ में देने का विचार उस हाउस वालों ने किया था किन्तु उपलब्ध नहीं होने पर प्लास्टिक के गिलास इस्तेमाल किए गए जो उस माहौल में बेमेल से लग रहे थे, किन्तु मजबूरी थी। एक स्टॉल पर नींबू की शिंकजी व अन्य शीतल पेय, वेफर्स, टाफियां, बिस्कुट आदि उपलब्ध थे।

जूनियर स्कूल के सभी अभिभावक, सभी वर्गों के शिक्षक मेले में आमंत्रित किए गए थे। सीनियर स्कूल के विद्यार्थी ब्रेक में या किसी रिक्त कालांश में आ सकते थे। फिर जूनियर स्कूल के 175 बच्चे तो थे ही जो भिन्न–भिन्न स्टॉल्स पर खाने पीने के अलावा गेम्स में भाग लेने में अत्यधिक उत्साहित नज़र आए।

मेला शुरू होते ही फटाफट चीज़ें बिकने लगी। बच्चे खुद भी दौड़–दौड़ कर अलग–अलग स्टॉल्स पर जाकर खरीददारी कर रहे थे। अभिभावकों को भी बड़ा आनन्द आया, अपने बच्चों को इस तरह चीज़े तैयार करते, बेचते, पैसा गिनते, संभालकर रखते देखकर।

क्राफ्ट की चीज़ें भी हाथों–हाथ बिक गई, जो अधिकतर बड़ों ने खरीदी। बच्चे तो खाने–पीने के अलावा गेम्स में अधिक रूचि ले रहे थे क्योंकि खेलने के आनन्द के साथ इनाम जीतना उनके लिए बड़ा आकर्षण था।

कुछ स्टॉल्स पर भीड़ अधिक होने पर बच्चों के लिए पैसे लेना, गिनना वापस करना कुछ मुश्किल दिखा तो शिक्षकों ने मदद की। कुछ स्टॉल्स पर खाद्य सामग्री मेला समाप्ति से पहले ही समाप्त हो गई तो दूसरी स्टॉल पर भीड़ बढ़ गई। गेम्स काउन्टर पर भीड़ अंत तक बनी रही।

छुट्टी के साथ ही मेला खत्म हो गया। कई दिनों तक बच्चे उसका हिसाब लगाते रहे। कितने की बिक्री हुई? कितने का अमुक–अमुक सामान खरीदा गया, उसका जोड़ फिर जमा राशि से उतना घटाकर बची लाभ राशि।

इस प्रकार एक मेले के माध्यम से बच्चों को बहुत से काम हाथ से करने के अलावा जोड़, घटाना, लाभ–हानि आदि का अच्छा अभ्यास हो गया, जो केवल कॉपी में सवाल हल करके नम्बर प्राप्त करने और उत्तीर्ण होने से बढ़कर जीवन में काम आने वाली चीज़ें थीं।

वि.वि सिंह, पूर्व प्रधानाध्यापिका, विद्या भवन जूनियर स्कूल, वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी में कार्यरत।

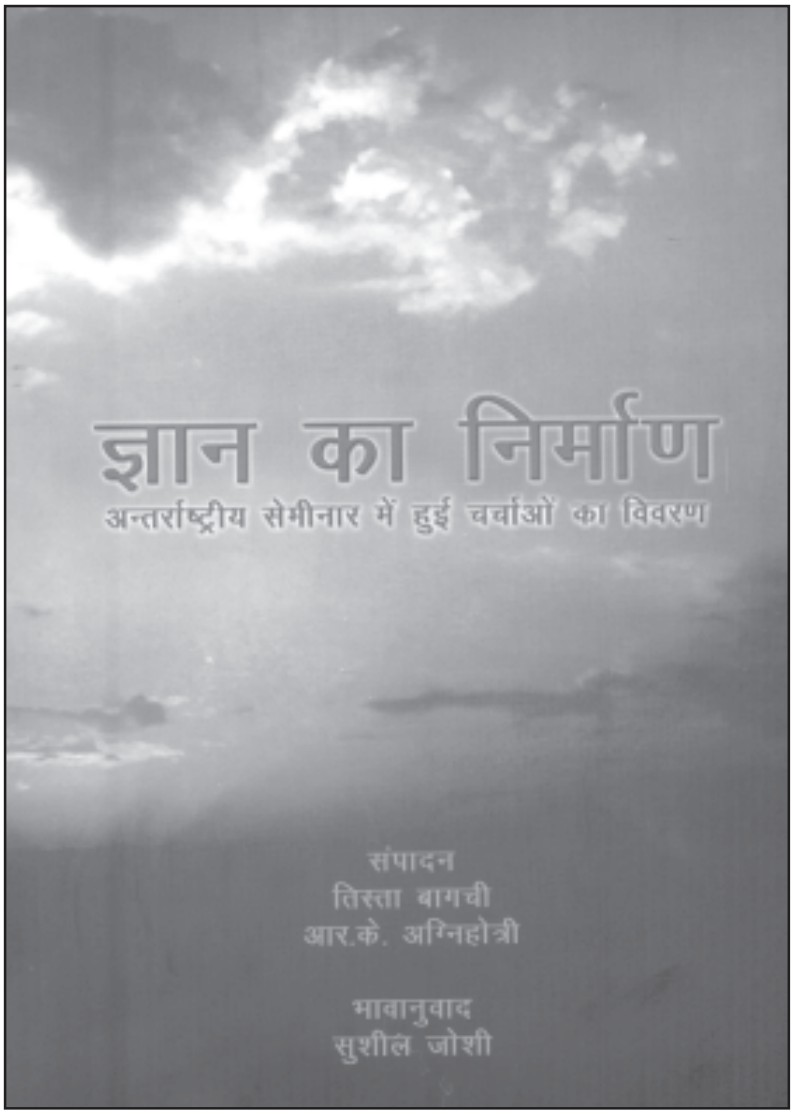

के. आर. शर्मा

हाल ही में विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर ने ज्ञान का निर्माण नामक दस्तावेज का प्रकाशन किया है। उल्लेखनीय है कि ज्ञान के निर्माण पर विद्या भवन सोसायटी ने एक सेमीनार का आयोजन अप्रैल 2004 में किया था। इस सेमीनार में देश–विदेश के विशेषज्ञों ने जो पर्चे पढ़े थे उनके वृतांत को इस दस्तावेज में शामिल किया गया है। 213 पेज में सिमटा यह दस्तावेज अपने आप में कई मायनों में अनूठा है। दरअसल सेमीनार का ताना–बाना इस रूप में बुना गया था कि इसमें यह बात समझी जा सकें कि आखिर एक बच्चे या बच्ची के जन्म लेने के बाद उसमें ज्ञान का निर्माण किस तरह से होता है? क्या उसको भाषा सिखाई जाती है या वो उसे स्वयं से सीखता है? क्या उसके दिमाग में कोई ऐसा केंद्र होता है जो भाषा से व अन्य ज्ञान के क्षेत्रों से संबंधित होता है। साथ ही यह भी कि शिक्षक को क्या प्रयास

करना चाहिए ताकि वो बच्चे की सिखने में मदद करें। दरअसल सेमीनार में जिस क्रम में विशेषज्ञों द्वारा पर्चे पढ़े गए थे उनको उसी क्रम में इस दस्तावेज में भी संजोया गया है। मूलतः पर्चे अंग्रेजी में पढ़ गए थे। लेकिन उनका हिंदी अनुवाद किया गया और उनका संकलन छापा गया है। इस दस्तावेज का हिंदी अनुवाद सुशील जोशी ने किया है।

यह दस्तावेज एक बच्चे से लेकर स्कूल और समाज तक ज्ञान के निर्माण की बात करता है। साथ ही यह दस्तावेज तमाम सामाजिक और शैक्षणिक समस्याओं की ओर भी इशारा करता है। इस सेमीनार का एक प्रमुख मकसद अकादमिक लोगों, शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों व गैर–सरकारी संगठनों के बीच एक सेतू का निर्माण करना था। चर्चा में स्कूली शिक्षा में ज्ञान के विभिन्न दायरों– भाषा, गणित, सामाजिक विज्ञान आदि में अवधारणाएं कैसे बनती है और भाषा में कैसे अंकित होती हैं पर विचार विमर्श हुआ। इसके साथ ही साथ ऐसे सवाल भी पैने रूप से उभरकर आए जो भाषा व ज्ञान रचना केा बारे में थे जैसेकि स्वयं के बारे में थे जैसे कि भाषा किस तरह से अवधारणाओं को स्वरूप प्रदान करती है। क्या यह अवधारणाओं के दायरे को सीमित भी कर देती है, क्या यह हमारे संज्ञान क्षमता तक को भी सीमित करती है? यदि हम इनसे संबंधित अनुसंधानों की बात करें तो ज्ञान के अन्य दायरों में इंसानी समझ बढ़ी हैं, लेकिन हमारे शिक्षा संस्थानों में इसकी महक नहीं पहुंच पाई है। वहां तो आज भी पारंपरिक व्यवहारवादी शिक्षा दर्शन व उससे उभरते सिध्दांतों का ही डंका बजता है। दरअसल उन तमाम मान्यताओं को तोड़ने के लिए ही इस सेमीनार का आयोजन किया गया था। और यह दस्तावेज इस रूप में मील का पत्थर कहा जा सकता है।

शैक्षणिक सत्र में पहले पर्चे में तिस्ता बागची ज्ञान को परिभाषित करने का प्रयास करती है। तिस्ता मानती हैं कि ज्ञान तो जंतुओं में भी होता है। मिसाल के तौर पर जंतुओं की कुछ प्रजातियों में चंद जंगली पत्तियों और जड़ी–बूटियों का ज्ञान होता है जो उनको पेट की गड़बड़ियों से बचाता है। परिंदे गीत गाते हैं। और यह गीत गाने की कला बचपन में वे अपने वयस्कों से सीखते हैं। लेकिन जंतु इस हुनर को ज्ञान के रूप में नहीं पहचानते। दूसरी ओर इंसान संज्ञानशील और परस्पर अंतःक्रियाशील जीव हैं। और मानव में ज्ञान की प्रणालियां संज्ञान आधारित वं अंतर्क्रिया आधारित, दोनों तरह की प्रक्रियाओं से निर्मित होती है। तिस्ता मानव समाज द्वारा रचे गए ज्ञान के इतिहास की भी बात करती है। साथ ही जानकारी और ज्ञान में अंतर करती है। जब से मानव जाति का इल्हाम हुआ है कि ज्ञान एक ताकत है, तब से ही यह स्पष्ट है कि समाज के ज्यादा शक्तिशाली लोगों द्वारा ज्ञान के सृजन और संग्रह पर नियंत्रण को तव्वजौ दी जाने लगी है। तिस्ता ने सेमीनार की पृष्ठभूमि रखते हुए इस पहल को उभारा है और इतिहास व वर्तमान दोनों संदर्भों से उदाहरण दिए हैं।

जीन आइचिसन ने पर्चा प्रस्तुत किया जिसमें बताया गया है कि बच्चे भाषा की जटिलता को कैसे समझते हैं। यहउ तो ज़ाहिर है कि सीखने का एक पक्ष आजीवन जारी रहता है– शब्द सीखना, शब्द भंडार का अर्जन । वे कहती है कि इसके बारे में कई साक्ष्य हैं कि दिमाग के हिस्सों में चोट लगने से कुछ क्षमताएं कम हो जाती हैं पर यह भी कि अन्य हिस्से कुछ क्षमताएं प्रदर्शित करने लगते हैं। भाषाशास्त्री प्रो. आर. अमृतावल्ली एक बुनियादी सवाल पर चर्चा करती हैं कि क्या इंसान खाली स्लेट लेकर पैदा होते हैं? वे कई उदाहरण प्रस्तुत करती हैं जो इस दृष्टिकोण को गलत दिखाते हैं। चोम्स्की के हवाले से अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए वे कहती हैं कि हमारे दिमाग में अलग–अलग इल्म के लिए परस्पर पृथक ढांचे होते हैं। चोम्स्की ने दिमाग और शरीर के बीच यही समानता प्रस्तुत की है कि जैसे शरीर में अलग–अलग अंग और तंत्र होते हैं वैसे ही दिमाग में मानसिक तंत्र होते हैं जिनमें से भाषा एक है। ऐसे

और भी तंत्र होंगे। यह मानते हुए कि दिमाग ढांचों के साथ जन्म लेता है और ये ढांचे के वास्तविक दुनिया के साथ अंतःक्रिया में विकसित होते हैं। प्रो. जयसीलन इसको आगे बढ़ते हुए बताती हैं कि जैसे मां के गर्भ में भ्रूण के अन्य अंगों का विकास होता है। (और यह एक जैविक घटना है) वैसे ही चोम्स्कीयाना भाषा वैज्ञानिकों का दावा है कि भाषा अर्जित करना भी एक जैविक घटना है। जन्म के समय मनुष्य की संतान में इसके परिपथ तैयार होते हैं, मस्तिष्क पहले से ही भाषा अर्जित करने के लिए तैयार होता है। यदि हर इन्सानी बच्चा, भाषा की क्षमता के साथ पैदा हुआ है और यदि उसकी परवरिश भाषा से किसी भी तरह के संपर्क से अलग–थलग की जाए, तो हो सकता है कि दिमाग में भाषा का संकाय कभी विकसित न हो और शायद आगे चलकर यह बच्चा कभी भी भाषा अर्जित न कर सके। यदि हालात यों हो कि जहां बच्चे के पास भाषा के कच्चे माल का इनपुट है, तो बच्चा भाषा अर्जित कर लेता है। भाषा का यह अर्जन पूरी मानव प्रजाति में लगभग एक जैसा होता है। इसका बुध्दि जैसी किसी चीज़ से लेना–देना नहीं होता। इसलिए इसको एक जैविक घटना कहा गया है। इसी बात को प्रो. राजेंद्र सिंह आगे बढ़ाते हुए और स्पष्ट करते हैं। राजेंद्र सिह कहते हैं कि बच्चे में भाषा के विकास के लिए न्यूनतम शर्त एक चिंनगारीनुमा उद्दीपन है। दरअसल यह चिंनगारीनुमा उद्दीपन मिलने पर सारे मनुष्य में एक समान होता है। और भाषा का यह अर्जन एक बार शुरू हो जाने के बाद खुद–ब–खुद और किसी अंदरूनी निगरानी के तहत होता जाता है। मजेदार बात तो यह है कि हम बाहर से जैसे शिक्षक या मां–बाप इसमें मदद या अवरोध पैदा नहीं कर सकते। भाषा अर्जन का यह नज़रिया तथाकथित नैसर्गिकता परिकल्पना का मूल विचार है। भाषा की जैविक बुनियाद का यह दावा चोम्स्की के लिए उपयोग साबित हुआ और सार्वभौमिक व्याकरण के दावे के साथ फिट हो गया। सार्वभौमिक व्याकरण अर्थात एक व्याकरण जो सारी मानव भाषाओं के मूल में हैं। दरअसल चोम्स्की से पहले दार्शनिकों ने यह कहा था कि भाषा में शब्दों का क्रम दिमाग में विचारों के क्रम का अनुगामी होता है। यदि यह सही माना जाए तो स्वाभाविक रूप से यह कहा जा सकता है कि सभी इंसान एक–सा सोचते हैं।

निर्मलांशु मुखर्जी बताते हैं कि ज्ञान के विभिन्न दायरों मसलन भाषा, गणित, आदि में अवधारणाएं कैसे विकसित होती है। ये भाषा पर अंकित कैसे होती हैं या भाषा हमारी अवधारणाओं को कैसे प्रभावित करती है? प्रमोद पांडे उच्चारण विज्ञान के औपचारिक और कामकाजी पहलुओं की बात करते हैं। उच्चारण विज्ञान भाषा का वह घटक है जो बोलने की आवाज़ों से वास्ता रखता है।

सेमीनार में पाठ्यक्रम नियोजन के ज्ञानशास्त्रीय ढांचे पर रोहित धनकर ने अपने विचार रखे। गांव में प्रेम और विरोध : स्कूली किताबों में नागरिक शास्त्र और सार्वजनिक कार्य की स्थानीय शैलियों से उसका विरोधाभास पर अमन मदान ने सटीक टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि सामाजिक समस्याओं को देखने के नजरिए अलग–अलग होते हैं। टी.एस. सत्यनाथ ने ज्ञान के खजाने के रूप में शरीर : कुछ भारतीय पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों में ज्ञान का निर्माण तथा पाठ्य का संक्षिप्तीकरण पर बी.एन. पटनायक ने प्रखर रूप से विचार व्यक्त किए।

विद्या भवन सोसायटी के शैक्षिक सलाहकार ह्रदयकांत दीवान और आंध्र प्रदेश के अशोक कुमार ने बताया कि लोग गणित को किस नज़रिए से देखते हैं। इन्होंने गणित शिक्षण को लेकर आ रही समस्याओं पर भी विचार व्यक्त कि। वे कहते हैं कि हमारी गणित की समझ पुख्ता नहीं होने के कारण गणित जैसा दिलचस्प विषय भी जटिल व बोझिल हो जाता है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्री प्रो. विजय एस. वर्मा ने ''समझ में मदद के लिए भौतिक शास्त्र कैसे पढ़ाएं''? पर बोलते हुए कहा कि विज्ञान को स्वीकृत ज्ञान के रूप में पढ़ाया जाता है। इसमें प्रयोग, खोजबीन या चर्चा की कोई जगह नहीं होती। दरअसल विज्ञान में प्रयोग और अवलोकनों आदि को फालतू की चीज़ माना जाता है। प्रो. वर्मा अपनी चर्चा को निर्माणवादी पेराडाइम से जोड़ते हैं। इसमें मानव ने बाहरी दुनिया को समझा है। बाहरी दुनिया को देखने–समझने के लिए वैज्ञानिक यंत्रों और प्रयोगों के माध्यम से पता करते हैं कि यथार्थ कैसा है। सिध्दांत निर्माण की ये सारी कोशिशें तब तक जारी रहती है जब तक कि यह संभावना बनी रहती है कि आगे किए जाने वाले प्रयोग उनको गलत साबित कर देंगे। किसी सिध्दांत द्वारा की गई भविष्यवाणी और वास्तविक अवलोकन से उसकी नजदीकी किसी भी सिध्दांत के अच्छे होने का पैमाना है। जब सिध्दांत द्वारा किए गए पूर्वानुमान और प्रयोगों द्वारा किए गए अवलोकनों के बीच अंतर बहुत ज्यादा हो जाता है तो लोग सोचने लगते हैं कि उसमें बदलाव करने का समय आ गया है। इस सिध्दांत को लेकर प्रो. वर्मा कुछ प्रयोगों की व्याख्या का सहारा लेते हैं। लेकिन प्रो. वर्मा का मानना है कि केवल निर्माणवादी पेराडाइम को अधार बनाकर शिक्षण का ताना–बाना नहीं बुनना चाहिए।

देश मे पनपे एक नवाचार होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के तहत विज्ञान का जो मॉडल बना था उसमें जो सबसे दिलचस्प और महत्वपूर्ण बात यह थी कि इसमें विज्ञान की विषय–वस्तु के बजाए विज्ञान की विधि को अहम माना गया था। दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग की डा. साधना सक्सेना व कमल महेन्द्रू इस बात को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में एक अपेक्षा यह थी कि इसके माध्यम से लोग सामाजिक यथार्थ पर सवाल उठा सकेंगे। साथ ही आप एक और महत्वपूर्ण बात की ओर इशारा करती हैं कि इस कार्यक्रम के तहत शिक्षकों को शैक्षिक रूप से मजबूत बनाने की कोशिशें की गई। लेकिन सरकार की ओर से शिक्षकों की समस्याओं को नजरंदाज किया जाता रहा है। और मैदानी हकीकत यह है कि शिक्षक एक तरह से अनाथ हैं।

कुल मिलाकर यह दस्तावेज कई सवालों और उनके जवाबों को अपने मे समेटे हैं। और ज्ञान के निर्माण पर एक स्पष्ट समझ की ओर कुछ सोचने और समझने को प्रेरित करता है।

पुस्तक का नाम– **ज्ञान का निर्माण**
संपादन– **तिस्ता बागची एवं आर. के. अग्निहोत्री**
भावानुवाद– **सुशील जोशी**
प्रकाशक– **विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर राज.**
सहयोग राशि– एक सौ रुपए।
पुस्तक मंगाने के लिए संपर्क करें–

- **पिटारा विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र, फतेहपुरा मोहनसिंह मेहता मार्ग, उदयपुर राज.**
- **पिटारा एकलव्य, अरेरा कॉलोनी भोपाल म.प्र. 462016**

के. आर. शर्मा, विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, फतेहपुरा, मोहनसिंह मेहता मार्ग, उदयपुर राज.

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र, उदयपुर की अनूठी पेशकश

पिटारा

बच्चों, अभिभवाकों, शिक्षकों और उन सब पढ़ने में दिलचस्पी रखने वालों के लिए शिक्षा पर उम्दा साहित्य

पिटारा में आप प्राप्त कर सकते हैं–

- विज्ञान, गणित, भाषा, सामाजिक अध्ययन पर गतिविधि आधारित पुस्तकें, चार्टस आदि।
- शिक्षा पर बेहतर साहित्य।
- कहानी, कविताओं पर आधारित किताबें।
- प्रयोगों और मॉडल बनाने के लिए श्रृंखलाबध्द किताबें।

यदि आप इस तरह के साहित्य की तलाश कर रहे हों तो एक बार पिटारा साहित्य जरूर देखें।

संपर्क
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र
डा. मोहन सिंह मेहता मार्ग, फतहपुरा
वि.भ. सोसायटी परिसर
उदयपुर(राज0)
फोनः 0294–2451497

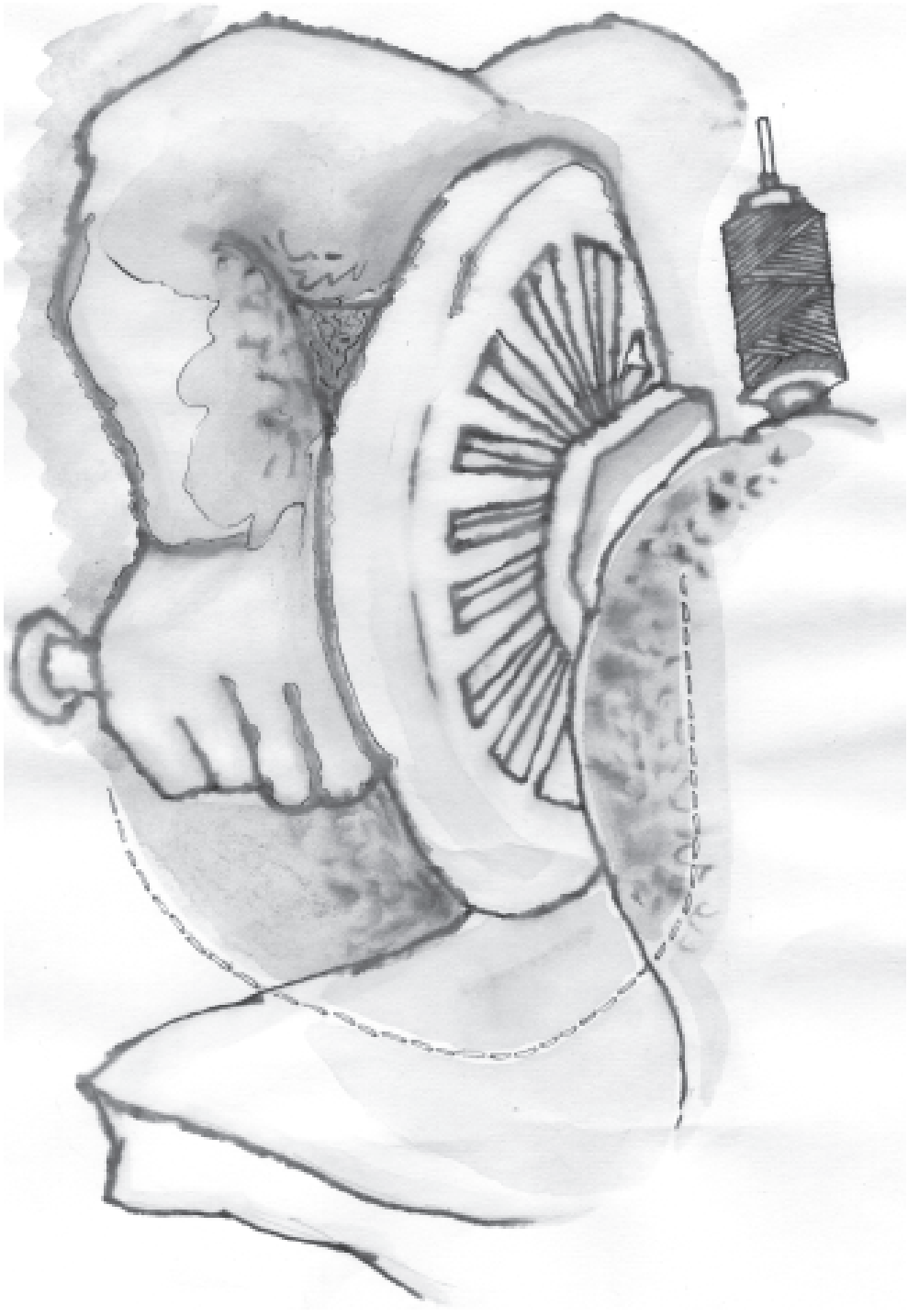

''बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश'' विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर एवं गूजरात विद्यापीठ, आश्रम रोड़, अहमदाबाद द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित।